हमें आत्मा-परमात्मा नारायण प्रिय लगें तो तुम सभी प्रिय रहोगे । जय जय...

❖ नीति-परायण बनो, साहसी बनो, धुन के पक्के बनो। तुम्हारे नैतिक चरित्र में कहीं एक धब्बा तक न हो, मृत्यु से मुठभेड़ लेने की हिम्मत रखो।

❖ अपने सामने एक आदर्श रखकर बढ़नेवाला व्यक्ति यदि हजार गलतियाँ करता हो तो मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ, बिना आदर्श का मनुष्य पचास हजार करेगा। अतएव आदर्श रखना श्रेष्ठ है।

❖ यह संसार कायरों के लिए नहीं है। भागने का प्रयत्न मत करो। सफलता या असफलता की परवाह मत करो।

❖ असत्य से सत्य अनंत गुना प्रभावशाली है और ऐसे ही बुराई से भलाई भी। यदि ये (सत्य, भलाई) बातें तुममें हों तो वे अपने प्रभाव से ही अपना रास्ता बना लेंगी।

❖ सत्य का अनुसरण करो, फिर वह तुम्हें चाहे जहाँ ले जाय। प्रत्येक भाव को उसके चरम सिद्धांत तक ले जाओ।

- स्वामी विवेकानंद

❖ अनिश्चितमना पुरुष भी मन को एकाग्र करके जब सामना करने को खड़ा होता है तो आपत्तियों का लहराता हुआ समुद्र भी दबकर बैठ जाता है।

- संत तिरुवल्लुवर

❖ जिनके हृदय में उत्साह होता है, वे पुरुष कठिन-से-कठिन कार्य आ पड़ने पर भी हिम्मत नहीं हारते।

- रामायण

❖ मनुष्य गुणों से उत्तम बनता है न कि ऊँचे आसन पर बैठने से। जैसे ऊँचे महल के शिखर पर बैठकर कौआ, कौआ ही रहता है गरुड़ नहीं बनता।

- चाणक्य नीति

वर्ष : १६ अंक : १५५ नवम्बर २००५ कार्तिक-मार्गशीर्ष, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

पृष्ठ : १६

पृष्ठ : ६

स्वभाव के चार प्रकार

इस अंक में

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)

	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक. में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

भगवान का पता

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं बताते हैं कि 'मुझ कृष्णतत्त्व को पाने के लिए भक्तों को क्या करना चाहिए ? भक्त सहज में मुझे कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?'

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अपना पता बता रहे हैं ! कोई किसी सेठ का पता बताये तो शंका हो सकती है। सेठ स्वयं अपना पता बताये तो क्या संदेह हो सकता है ? हो सकता है, 'इन्कमटैक्स' के डर के मारे सेठ भी गलत पता बता दे ! किंतु सेठों-के-सेठ श्रीकृष्ण को किसका डर ? और अपने प्यारे भक्तों को वे गलत पता क्यों बतायेंगे ?

'गीता' के नवें अध्याय के २७वें श्लोक में श्रीकृष्ण अपने प्यारे भक्तों को पता बताते हैं :

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

'हे कुंतीपुत्र ! तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो यज्ञ करता है, जो कुछ दान करता है और जो कुछ तप करता है वह सब मुझे अर्पण कर दे।'

ऐसा करने से क्या होगा ? श्रीकृष्ण आगे बताते हैं :

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता : ९.२८)

इस प्रकार मुझे अर्पण करने से, जिनसे कर्मबंधन होता है ऐसे शुभ अर्थात् विहित कर्म और अशुभ अर्थात् निषिद्ध कर्म - संपूर्ण कर्मों के फलों से तू मुक्त हो जायेगा। अपने सहित सब मुझे अर्पण करनेवाला और सबसे मुक्त हुआ तू मुझे प्राप्त हो जायेगा।

हम कर्म के कर्ता होते हैं तो हमें फल का भोक्ता भी बनना पड़ता है। कर्म शुभाशुभ होता है, फलस्वरूप सुख-दुःख भी आता है। सुख हर्ष देकर चला जाता है और हमारा समय खा जाता है। इसी प्रकार दुःख घुटाई-पिटाई करके, हमारी शुद्धि करके समय खा जाता है। हम पुनः ठन-ठनपाल ही रह जाते हैं।

कुछ वैष्णव महात्मा कहते हैं : 'शुभ कर्म का फल सुख है। सुख ठाकुरजी को अर्पण कर दो तथा अशुभ से अपने को बचाओ।'

कुछ बोलते हैं : 'अशुभ कर्म से तो बचें फिर भी अशुभ वासना से अशुभ कर्म हो जाते हैं तो क्या करें ?'

...भगवान के आगे हृदयपूर्वक निवेदन कर दें कि

'भगवान ! हमारे शुभ कर्मों का फल आप ले लो साथ ही हमारी अशुभ वासना को भी आप ही मिटाओ। हम जैसे-तैसे हैं, आपके हैं।' इस तरह भगवान की, समर्थ की शरण ले लें। भगवान जब शुभ स्वीकार कर लेंगे तो अशुभ को मिटाने में भी देर नहीं करेंगे।

ऐसी भावना करोगे तो भगवान देखते हैं, 'शुभ तो इसने दे दिया। अब यह मेरा है। वास्तव में इसका स्वरूप तो शुभ-अशुभ से परे है, यह ऐसा जानता ही नहीं है।' भगवान तुम्हारे शुभ कर्म के फलभोग की तथा सुख की वासना मिटी हुई देखकर तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे और तुम्हारे अंतःकरण में प्रकट होकर ज्ञान दे देंगे, जिससे तुम सुख-शांति व आनंद के दाता हो जाओगे, शिवस्वरूप, रामस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप हो जाओगे।

संसार की नश्वरता का विचार करके विचारवान धीरे-धीरे देह, मन, इन्द्रियों से एवं स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण शरीर से भी अपने को पृथक् मान लेता है। 'कर्म प्रकृति में हो रहे हैं। स्थूल शरीर में स्थूल कर्म होते हैं, सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म भावना होती है, कारण शरीर में समाधि और निद्रा होती है, उन सबको देखनेवाला पुरुष-आत्मा उनसे अलग है' - ऐसा विचार के फिर उस आत्मा-परमात्मा की प्रीति का आनंद लेता है। यह विचारवान का मार्ग है।

भावनावाला पहले प्रेम करके भगवद्भाव का सुख लेकर भगवत्-अर्पण करते-करते अपने-आपको भगवान से एकाकार कर देता है। सब कुछ भगवान को अर्पण करके फिर अपने 'मैं' को भी भगवान में अर्पित कर देता है।

निष्काम कर्मवाला सोचता है, 'कर्म सब प्रकृति में होते हैं और कइयों के सहयोग से होते हैं। अकेला आदमी नहीं करता है।' अतः बहुतों के हित में कर्म करके, उसके फल की वासना छोड़कर नैष्कर्म्य सिद्धि पाकर वह भगवद्शांति पाता है।

कर्म करो चाहे भक्ति करो, चाहे तत्त्वज्ञान का आश्रय लो अथवा तीनों को थोड़ा-थोड़ा साथ में लो लेकिन जीवन की शाम होने से पहले जीवनदाता का सुख पाने की कला सीख लो। जीवनदाता से अपनी एकता का अनुभव कर लो, जीवनदाता से अपना संबंध जोड़ लो, बस।

शुभाशुभफलैरेवं... भगवान अपना पता दे रहे हैं कि आप बाहर के सुख की इच्छा छोड़कर शुभ कर्म करें, सत्कर्म करें। अहंकार पोसने की इच्छा छोड़कर भगवान की प्रीति के निमित्त शुभ कर्म करें और उन शुभ कर्मों को भी भगवत्-अर्पण कर दें, इससे आपका अंतःकरण शुद्ध होगा। शुद्ध अंतःकरण में शुद्ध ज्ञान, शुद्ध प्रेम की प्राप्ति होगी।

वास्तव में आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, शुद्ध प्रेमस्वरूप है, शुद्ध आनंदस्वरूप है और शाश्वत है। यही आपका वास्तविक स्वरूप है, यही भगवान का पता है।

भगवान के 'माइनस पाइंट' क्या हैं ?

भगवान प्रेम के भूखे हैं यह भगवान का 'माइनस पाइंट' है और भगवान की भूख मिटाने की शक्ति तुम्हारे पास है यह तुम्हारा 'प्लस पाइंट' है। पढ़ा-अनपढ़ा, गरीब-अमीर सभी प्रेम कर सकते हैं। मन को जिस बात का चस्का लगता है उस पर वह कुर्बान हो जाता है। एक बार परमात्मा का चस्का मन को लगा दो फिर वह परमात्मा के लिए कुर्बान हो जायेगा और उसे पा लेगा यह आपका 'प्लस पाइंट' है।

दूसरी बात, भगवान तुमको छोड़ नहीं सकते, तुमको अपने राज्य से वे निकाल नहीं सकते। जब भगवान सर्वत्र हैं तो निकालकर कहाँ रखेंगे ? सबका आत्मा बनकर बैठे हैं तो तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं ? अतः परमात्मा को पाने के यत्न में ही लग जाओ। यही परमात्म-विश्रांति में पहुँचा देगा।

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

हिरण्यकशिपु मारा गया, सारे संसार में आनंद छा गया और देवताओं के दुःख का अंत हो गया, पर राजसभा के मध्य भगवान नृसिंह के उस विकराल स्वरूप के प्रचण्ड तेज से उनके सम्मुख डर के मारे किसीका भी जाने का साहस नहीं होता। अन्य देवताओं की कौन कहे, ब्रह्मा और शिव भी दूर ही खड़े उस अद्‌भुत छवि को देखते थे। भगवान श्री नृसिंह उस समय साक्षात् क्रोधमयी मूर्ति लग रहे थे। भगवान का घोर गर्जन, उनके गले में दैत्यराज की अँतड़ियों की माला और रक्तरंजित शरीर की ओर किसीको देखने का साहस नहीं होता था। अंत में सब देवताओं ने जगन्माता महालक्ष्मी का स्मरण किया, उनकी स्तुति की। जगज्जननी प्रसन्न होकर उपस्थित हुई। ब्रह्मादि देवताओं ने उनसे प्रार्थना की, ''माता! इस समय जगत्पिता प्रभु का जैसा विकराल स्वरूप है, उनका जैसा क्रोध है और वे जैसे घोर गर्जन से बारम्बार भूमण्डल को कंपायमान कर रहे हैं, ऐसा स्वरूप हम लोगों ने इससे पूर्व कभी नहीं देखा था। अतएव हम लोग भयभीत हो रहे हैं। हममें से किसीका साहस नहीं होता कि उनके चरणकमलों तक जाय और प्रार्थना करके उनके कोप को शांत कराये। इसीलिए हम लोगों ने आपको कष्ट दिया है। माताजी! इस समय आप ही उनके क्रोध को शांत कर सारे संसार को इस महान आतंकरूपी संकट से मुक्त कर सकती हैं।'' देवताओं की प्रार्थनानुसार जगन्माता महालक्ष्मी कुछ दूर तक तो गयीं, परंतु भगवान का भयंकर नृसिंहरूप और प्रचंण्ड तेज देखकर तुरंत लौट आयीं। महालक्ष्मी ने देवताओं से कहा : ''देवगण! मैंने भी आज तक न तो भगवान का ऐसा स्वरूप ही कभी देखा और न ऐसी क्रोधभरी प्रज्वलित आँखें ही देखी हैं, अतएव मेरा साहस नहीं होता कि मैं उनके समीप तक जाऊँ एवं उनके क्रोध को शांत कराऊँ।'' अंत में सब देवताओं की सम्मति से ब्रह्माजी ने प्रह्लादजी से कहा : ''बेटा प्रह्लाद! अब त्रिलोकी में भगवान का क्रोध शांत करानेवाला तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं है। यह क्रोध तुम्हारे पिताजी को मारकर तुम्हारी रक्षा करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है, अतएव तुम्हीं इस क्रोध को शांत करा सकते हो।'' ब्रह्माजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रह्लादजी शांतचित्त से निर्भय हो भगवान के समीप जा पहुँचे और उनको साष्टांग प्रणाम किया। जिस भयानक नृसिंह रूप के भय से भयभीत होकर ब्रह्मादि देवता दूर खड़े थे, उसी

स्वरूप के श्रीचरणों में प्रह्लादजी निर्भय हो साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं। यह क्या है ? किसके प्रभाव से आज प्रह्लाद निर्भय हैं ? यह है भक्त का महत्त्व और अनन्य भगवद्भक्ति की अनंत महिमा, जिसके वश होकर भगवान को इस प्रकार की अलौकिक लीलाएँ करनी पड़ती हैं।

धन्य है भक्तवत्सलता ! भगवान आपकी शालीनता, आपका सामर्थ्य आप ही जानें। प्रह्लाद जैसे बालक से भी क्षमा माँगने में आपको संकोच नहीं ! हे सर्वसमर्थ ! आपका सामर्थ्य, आपकी नम्रता, आप ही जानें।

भक्त-वात्सल्य रस का चमत्कार

भगवान ने देखा कि प्रिय बालक प्रह्लाद चरणों पर पड़ा साष्टांग प्रणाम कर रहा है, किंतु हमारे प्रभाव से इसकी वाणी रुक रही है, यह भयभीत नहीं अपितु आनंदमुग्ध हो रहा है, अतएव उन्होंने उसे अपने भक्तभयहारी भुजदण्डों से उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया और कालरूपी सर्प के भय से भीत चित्तवाले लोगों को अभय प्रदान करनेवाला अपना करकमल प्रह्लाद के सिर पर फेरने लगे। भगवान का कोप शांत हुआ और उनके हृदय में दया की बाढ़-सी आ गयी। भगवान के करकमलों का मधुर स्पर्श होते ही प्रह्लाद की सारी किंकर्तव्यविमूढ़ता जाती रही, उनका शरीर असीम हर्ष से रोमांचित हो गया, नेत्रों से आनंदाश्रुओं की धाराएँ बहने लगीं और उसी क्षण उनके हृदय में अपूर्व ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो गया। प्रह्लाद परमानंद को प्राप्त होकर भगवान के चरणकमलों के ध्यान में शरीर की सुध-बुध भूल गये। भगवान ने स्नेहमयी जननी की भाँति प्रह्लाद का मस्तक सूँघते हुए बड़े ही कोमल वचनों में संकुचित होते हुए-से कहा :

क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत्
क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते।
आलोचितं विषयमेतदभूतपूर्वं
क्षन्तव्यमंग यदि मे समये विलम्बः ॥

'बेटा प्रह्लाद ! कहाँ तो तेरा कोमल शरीर और तेरी सुकुमार अवस्था तथा कहाँ उस उन्मत्त के द्वारा की हुई तुझ पर दारुण यातनाएँ। ओह ! यह कैसा अभूतपूर्व प्रसंग देखने में आया। प्रिय वत्स ! मुझे आने में यदि देर हो गयी हो तो तू मुझे क्षमा कर देना।'

धन्य है भक्तवत्सलता ! भगवान आपकी शालीनता आप ही जानें। आपका सामर्थ्य भी आप ही जानें। प्रह्लाद जैसे बालक से भी क्षमा माँगने में आपको संकोच नहीं हुआ ! हे सर्वसमर्थ ! आपका सामर्थ्य, आपकी नम्रता आप ही जानें। देव ! देव !! हम तो धनभागी हो रहे हैं आपकी लीला का स्मरण करते हुए। **ॐ... ॐ श्री परमात्मने नमः।**

भगवान के स्नेहयुक्त वचन सुनकर प्रह्लाद आनंदविह्वल हो गये। फिर वे मन-ही-मन सोचने लगे : 'जिन उग्र नृसिंहरूप भगवान की आराधना एवं स्तुति करने में ब्रह्मादि देवतागण, मुनिगण और सत्त्वगुण में जिनकी अपार बुद्धि है वे सिद्धगण भी जब समर्थ नहीं हुए, तब इस प्रकार का साहस करना मेरे लिए कैसे संभव है ? फिर भी इन्हींकी कृपा से मैं स्तुति करूँगा। **ऐश्वर्य, उत्तम कुल में जन्म, सौन्दर्य, पांडित्य, इन्द्रियों की निपुणता, कांति, प्रताप, बल, उद्यम, बुद्धि, तपस्या एवं अष्टांगयोग - ये मनुष्यों के बारह गुण हैं,** किंतु परब्रह्म परमात्मा की आराधना के लिए ये गुणमात्र ही पर्याप्त नहीं हैं। उसके लिए तो एकमात्र भक्ति ही पर्याप्त है। अतएव इन बारह गुणों के न होने पर भी शरणागति भक्ति के द्वारा भगवान ने गजराज का उद्धार किया था। भगवान पद्मनाभ के पदारविंद की भक्ति से विमुख - ज्ञान, सत्य, दम, श्रुत, अमात्सर्य, ह्री (लज्जा), तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति एवं शम - इन बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण की अपेक्षा मैं उस भगवद्भक्त श्वपच को, जिसने अपना मन, वचन आदि सब कुछ भगवान के चरणारविंद में अर्पण कर दिया है, श्रेष्ठ मानता हूँ। क्योंकि भगवत्-शरणागत श्वपच अपने समस्त कुल को पवित्र कर देता है परंतु वह भगवद्विमुख ब्राह्मण स्वयं अपना भी उद्धार नहीं कर सकता। भगवान अपनी भक्ति अथवा अपना मान अपने लाभ के लिए नहीं चाहते, प्रत्युत कर्ता के ही लाभ के लिए चाहते हैं। जैसे तिलकादि को धारण करने से धर्मपालन के साथ ही अपने मुख की शोभा भी बढ़ती है, वैसे ही भगवान का मान करने से अपना ही मान बढ़ता है। यद्यपि मैं दैत्य जैसे नीच कुल में उत्पन्न हुआ हूँ और संसार की नीच प्रवृत्ति के वशवर्ती हूँ, तथापि अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान की स्तुति करूँगा। क्योंकि भगवान की स्तुति करने से इस मायाग्रसित संसार के बंधन से मुक्त और पवित्र होकर लोग आनंद प्राप्त करते हैं। इन बातों को सोच-विचारकर प्रह्लादजी स्तुति करने लगे।

(क्रमशः)

अपने स्वभाव को इतना ऊँचा ले जा सकते हैं कि मनचाहे भगवान को अपने दिल में प्रकट कर सकते हैं, मनचाहे भगवान के धाम में जा सकते हैं। ऐसे उत्तम कर्म करने का अधिकार मनुष्य-योनि में है।

स्वभाव के चार प्रकार

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

चार प्रकार के स्वभाव होते हैं :

१. प्राकृतिक स्वभाव।
२. वर्णगत स्वभाव।
३. उत्पादित स्वभाव।
४. ज्ञानी का स्वभाव।

पहला है समष्टि का स्वभाव, प्रकृति का स्वभाव। उसमें फेरबदल होता रहता है। पेड़ का बढ़ना, वृक्ष होना, सूख जाना... मनुष्य का, पशु का, प्राणी का पैदा होना, बड़ा होना, बूढ़ा होना, बीमार होना, मर जाना - यह सब पर लागू होता है। देवताओं का पद भी समय पाकर चला जाता है।

दूसरा है वर्णगत स्वभाव। जैसे - ब्राह्मणों का है। वह यज्ञ में, जप में, उपदेश में, वाणी में शूर होगा। क्षत्रिय है तो शूरवीर होगा। वैश्य है तो व्यवहार में, व्यापार में कुशल होगा। दलित है तो सेवाभाव में उसकी योग्यता विकसित रहेगी। यह वर्णगत स्वभाव है।

इंदिरा गाँधी की गुरु माँ आनंदमयी जिनके चरणों में बैठकर सत्संग सुनती थीं वे स्वामी अखंडानंदजी महाराज मेरे मित्र थे। उनकी पुस्तक में यह बात आती है - पंजाब में एक विधवा ब्राह्मणी का लड़का बछड़ों को पकड़ता और उनके कान काट लेता था। बुजुर्गों ने सोचा, 'ऐसा क्यों है ? ब्राह्मण का छोरा और निर्दोष गाय, बछड़ों के अकारण कान काटे ?' उन बुजुर्गों ने खोज की तो पता चला कि पिता मरा उसके कुछ महीनों बाद यह छोरा जन्मा था। १४ महीने हुए कि १६ महीने हुए पता नहीं। बुजुर्ग लोग उसकी माँ के पास गये और पूछा : ''देवी ! सच बता कि यह बेटा तो तुम्हारा है पर इसका असली बाप कौन है ? हमको संदेह होता है। तेरा नाम हम जाहिर नहीं करेंगे परंतु हमारा संदेह मिटाने का पुण्य तू प्राप्त कर।''

महिला ने कहा : ''मेरे बेटे का असली बाप एक कसाई है जो गायों की हत्या करता था।''

बुजुर्गों के संदेह का समाधान हो गया। ...तो यह वर्णगत स्वभाव है।

क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना। श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान में विषादग्रस्त अर्जुन से कहते हैं :

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

'अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे भय नहीं करना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : २.३१)**

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय
युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

'या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : २.३७)

तीसरा है उत्पादित स्वभाव। आप सात्त्विक कर्म करते हैं, दान-पुण्य करते हैं, दया-धर्म करते हैं, किसीके लुच्चे-लुफंगे छोरे को अपनी दुकान पर रखकर उसको कार्य सिखा के अपने पैरों पर खड़ा कर देते हैं तो ऐसे सात्त्विक कर्म करने से आपके स्वभाव के सात्त्विक अंश को पोषण मिलेगा और वह विकसित होगा। अगर आप किसीका शोषण करके जीते हैं तो आपके स्वभाव का राजसी अंश पोषित होगा। ऐसे ही किसीके छोरे की टाँगें तोड़ते हैं, खून करवाते हैं तो स्वभाव का तामसी अंश बढ़ेगा। आप जैसे कर्म करेंगे वैसा आपका स्वभाव बनेगा।

अपने स्वभाव को आप इतना ऊँचा ले जा सकते हैं कि मनचाहे भगवान को अपने दिल में प्रकट कर सकते हैं, मनचाहे भगवान के धाम में जा सकते हैं ! ऐसे उत्तम कर्म करने का अधिकार मनुष्य-योनि में है।

मनुष्य को इतना स्वातंत्र्य प्राप्त है कि भगवान का प्रेमी, सखा, दास यहाँ तक कि भगवान का माई-बाप भी बन सकता है।

चौथा है

ज्ञानी का स्वभाव। उनके द्वारा सहज कर्म होते हैं। आत्मा-परमात्मा को पाये हुए महापुरुषों के द्वारा सहज ही लोकमांगल्य के कार्य हो जाते हैं। कुछ करना, कुछ पाना, कुछ लेना, कुछ देना उनके लिए शेष नहीं रहता है। वे तो मस्त रहते हैं ज्ञानी आत्मारती में।

आप अपने स्वभाव को उन्नत करने में स्वयं समर्थ हैं। आप सात्त्विक कर्म करो ताकि आपका स्वभाव सात्त्विक बने। फिर संतों के संग में जाकर, उनके अनुभव की ऊँचाइयों तक के परम सात्त्विक परमात्मा में गोता मार लो।

'परिप्रश्नेन...'

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

प्रश्न : पूज्य बापूजी ! संसार से तरना बड़ा दुष्कर है, क्या करें ?

उत्तर : संसार से तरना बड़ा आसान है केवल सही युक्ति मिल जाय ! आप परिस्थितियों को सच्चा न मानें। परिस्थितियाँ आने-जानेवाली हैं और सत्-चित्-आनंदस्वरूप मेरा आत्मा शाश्वत है- इस बात पर दृढ़ हो जायें तो बहुत ही आसानी से संसार से तर जाओगे, आसानी से सभी दुःखों से पार हो जाओगे। चित्त में न दुःख का भय रहे, न सुख का लालच रहे, जो भी परिस्थितियाँ आयें सम रहकर उनका उपयोग करने की कला सीख लें। सुख में कितना भी चिपको सुख रहनेवाला नहीं है, दुःख से कितना भी भागो वह भी रहनेवाला नहीं है। जब ये रहनेवाले नहीं हैं तो इनसे चिपकने या भागने की क्या जरूरत है ? सुख-दुःख का सदुपयोग कर लो बस। सुख बाँटों और जिन इच्छाओं, वासनाओं तथा कर्मों से दुःख आता है उनसे उपराम हो जाओ - हो गया सदुपयोग।

न दुःख का भय रहे, न सुख का लालच; जो भी परिस्थितियाँ आयें सम रहकर उनका उपयोग करने की कला सीख लें। बहुत ही आसानी से सभी दुःखों से पार हो जाओगे।

सुख सपना दुःख बुलबुला, दोनों हैं मेहमान।
दोनों बीतन दीजिये, सोऽहं को पहचान॥

प्रश्न : धर्मपालन, शास्त्राचरण एवं योग का फल क्या है ?

उत्तर : *धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥*

(श्रीरामचरित. अरण्य कां. : १५.१)

धर्मपालन एवं शास्त्राचरण का फल यही है कि संसार से उबान आ जाय, वैराग्य आ जाय। यदि वैराग्य नहीं आता है तो आपने जीवन में धर्मानुसार आचरण नहीं किया है एवं शास्त्रों का अर्थ ठीक से नहीं समझा है। योग से मनुष्य ज्ञान को पाता है। ज्ञान से मोक्ष (निर्वाण) की प्राप्ति होती है और राग-द्वेष, भय-चिंता, शोक-मोह से पार होकर परम पद में स्थिति हो जाती है। नहीं तो वह दुःख-क्लेश और नरकों में भटकता रहता है।

प्रश्न : केशव का अर्थ क्या है ?

उत्तर : 'केशव' - 'के' माने सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी, 'श' माने संहारकर्ता शिवजी और 'व' माने पालनकर्ता विष्णुजी। एक ब्रह्मांड के एक ब्रह्माजी, एक विष्णुजी और एक शिवजी होते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्मांड हैं, अतः अनन्त कोटि ब्रह्माजी, विष्णुजी और शिवजी हुए। उन सबमें जो आत्मा-परमात्मा व्याप रहा है वह सच्चिदानंद है केशव।

ब्रह्माजी, विष्णुजी, शिवजी इनके हृदय में, आपके-हमारे, माइयों के, भाइयों के व अनन्त प्राणियों के हृदय में जो प्रेरक अंतरात्मा-परमात्मा है, वह है 'केशव'। जो सबका भर्ता, प्रकाशक एवं अनुशासनकर्ता है, अच्छा काम करते हैं तो बल देता है, ज्ञान देता है, प्रेम देता है और गड़बड़ करते हैं तो रोकता-टोकता है, खिंचाई करता है - वह है 'केशव'। अनन्त कोटि ब्रह्मांडनायक परमात्मा का नाम है 'केशव'।

प्रश्न : भगवान को 'गोविन्द' क्यों कहते हैं ?

उत्तर : 'गो' माने इन्द्रियाँ। आँख, नाक, कान, हाथ-पैर आदि इन्द्रियों में उस परमेश्वर की सत्ता, स्फूर्ति और ज्ञान है, इसलिए उसका नाम है 'गोविन्द'।

भगवत्कृपा से कठिनाइयों का अंत

भगवान के कृपा-बल से जीवन की सारी कठिनाइयाँ वैसे ही दूर हो जाती हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार। सारी कठिनाइयाँ मन में होती हैं। भगवान के कृपा-बल से मन की यह भ्रांति मिट जाती है, मलिन मन धुल जाता है। फिर किसी कठिनाई की कल्पना भी नहीं रहती, सर्वत्र-सर्वदा सरलता के साथ सदा आनंदमयी प्रभुकृपा की झाँकी होती रहती है।

फिर जीवन-मरण, संयोग-वियोग, लाभ-हानि, मान-अपमान, स्तुति-निंदा, जय-पराजय का कोई भी द्वंद्व किसी प्रकार का असर नहीं करता, सभी कृपामय की कृपा-लीला के मधुर दृश्य बन जाते हैं।

जब तक तुम अपने को भाग्यहीन, दुर्दशाग्रस्त, दुःखी, निराश्रय, निराश, असहाय मानते हो, तब तक तुमने भगवान के परम कृपा-बल को नहीं अपनाया है। भगवान के कृपा-बल का आश्रय लेते ही भाग्य चमक उठता है, दुःख के बादल तितर-बितर हो जाते हैं, परम आश्रय पाकर चित्त उल्लसित हो उठता है, 'निराश और असहाय' मानने की वृत्ति ही नष्ट हो जाती है। जिसको भगवत्कृपा का आश्रय हो, उसमें निराशा और असहायता की भावना क्यों रहने लगी?

तुम भगवान के कृपापात्र हो, स्नेहपात्र हो, अपने हो, प्यारे हो। जगत में चाहे तुम दीन, दुःखी, घृणित, अपमानित, उपेक्षित, विषय-पदार्थ हीन, मलिन कुछ भी माने जाते हो, कैसे भी दिखते हो - भगवान की आत्मीयता, उनका प्यार किसी अवस्था में जरा भी कम नहीं होता। सर्वभूत-सुहृद भगवान का स्वभाव बदले तब कहीं उसमें कमी की शंका हो। नित्य सम-एकरस भगवान का सर्वभूत-सौहार्द भी नित्य है क्योंकि वह उनका स्वभाव है। फिर तुम जो सर्वशक्तिमान, सर्वलोक-महेश्वर, सर्वज्ञ के सर्वथा और सर्वदा प्रीतिभाजन, प्रिय होने पर भी अपने को दीन-हीन, भाग्यहीन मानते हो, इसीसे तुम दीन-दुःखी रहते हो। अपनी इस झूठी मान्यता को छोड़ दो। भगवान के अनुग्रह का, उनके सौहार्द का, उनकी प्रीति का अनुभव करो और उनके कृपा-बल को अपनी सम्पत्ति मानकर, उस पर अपना हक मानकर उससे सम्पन्न हो जाओ।

जगत के ये सारे दुःख-क्लेश, सारे अभाव-अभियोग, सारे शोक-विषाद तभी तक हैं, जब तक तुम्हें भगवान की कृपा के दर्शन नहीं हुए। जिस क्षण भगवत्कृपा की झाँकी तुम्हारे मन ने की, उसी क्षण भगवत्कृपा का परम बल तुम्हारा सारा अभाव मिटा देगा।

अभाव की वृत्ति मन से पैदा होती है और जिस वस्तु का यथार्थ में अभाव है, उसकी प्राप्ति की कल्पना से अभाव की वृत्ति शांत नहीं होती, इसीसे प्रत्येक विषय-लाभ अभाव की अभिवृद्धि करनेवाला होता है। अभाव का नाश तो जो भाववाली है, सदा है, सदा रहेगी, उस सच्ची वस्तु की प्राप्ति से होगा और वह सच्ची वस्तु है - नित्य सत्य भगवान।

ये नित्य सत्य भगवान ही आनंददाता हैं, आनंद के केन्द्र हैं, आनंदमय हैं। इन भगवान की प्राप्ति होती है इनकी महती कृपा से और वह कृपा सदा सबके अधिकार की वस्तु है क्योंकि भगवान स्वभाव से ही सर्वसुहृद हैं। तुम यदि उसको दुर्लभ, अपने अधिकार से परे की वस्तु मानोगे, तब तो तुम उससे वंचित ही रहोगे, पर उसे अपने अधिकार की मानते ही तुम्हारा उस पर अधिकार हो जायेगा और वह तुम्हारे सारे दुःख-क्लेशों को मिटाकर हृदय में परम शांति के सुखद अनन्त सागर को लहरा देगी।

भगवान के कृपा-बल का आश्रय लेते ही भाग्य चमक उठता है, दुःख के बादल तितर-बितर हो जाते हैं तथा 'निराश और असहाय' मानने की वृत्ति ही नष्ट हो जाती है।
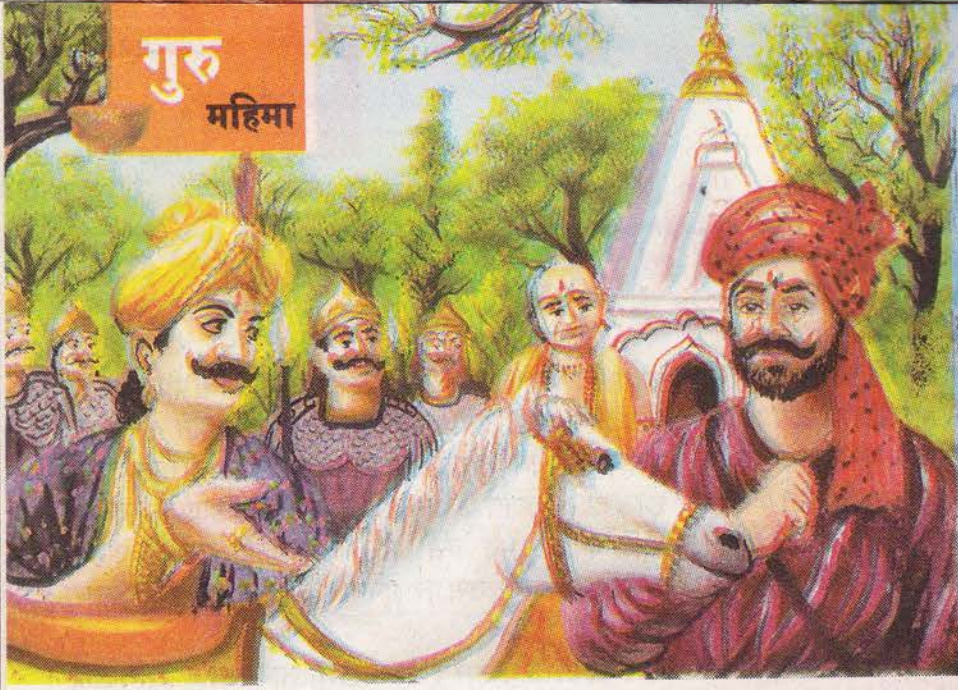
कैसी है गुरुकृपा ! चोर, डाकू भी जब सद्गुरु का आश्रय लेता है तो श्रद्धा, चिंतन के बल से तर जाता है, फिर औरों की तो बात ही क्या है ?

गुरु-आज्ञापालन का चमत्कार !

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

एक दिन डाकू घाटम घोड़े पर खेड़ी से जयपुर की ओर जा रहा था । राह में किन्हीं महात्मा को देखकर उसे लगा, 'इतने पाप किये हैं । चलो, महात्मा को प्रणाम कर लूँ।'

घोड़े से उतरकर उसने महात्मा को प्रणाम किया । महात्मा कोई साधारण महात्मा नहीं थे, बड़ी ऊँची कमाई के धनी थे। उन्होंने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

''महाराज ! संत के साथ क्या झूठ बोलना ? मैं डाकू घाटम हूँ। आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।''

''ठीक है । मेरा आशीर्वाद चाहता है तो मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ, घाटम ! तेरा ऐसा कल्याण हो कि दुनिया तुझे याद करे। बेटा ! अगर तू मेरी बात मान लेगा तो संतों की जिह्वा पर भी तेरा नाम आयेगा।''

''महाराज ! आज्ञा करिये, किंतु आप कहें कि डाका छोड़ दे, दारू छोड़ दे तो मैं नहीं छोड़ूँगा। बाकी कोई आज्ञा हो तो करिये, मैं मानूँगा।''

''बेटा ! जो करना हो कर, पर मेरी चार बातें मान।''

''महाराज ! कौन-सी चार बातें ?''

''देख, घाटम ! एक तो तू सत्य बोलना । दूसरा, साधु-संत के आगे सेवा-भाव से जाना। उनके दैवी कार्य में विघ्न मत करना; उसमें प्रमाद, लापरवाही नहीं करना। संत के कार्य में अथवा संत के साथ व्यवहार करने में गद्दारी मत करना। साधु-संत के हृदय को ठेस न लगे, इसका ध्यान रखना।

तीसरा, जो कुछ भी खाये-पीये भगवान को अर्पण करके खाना-पीना। चौथा, कहीं भगवान की आरती होती हो तो उसमें सम्मिलित हो जाना। आरती के दर्शन करना पुण्यदायी होता है। इससे पाप नाश होते हैं, वातावरण शुद्ध होता है, हृदय पवित्र होता है, शत्रुबुद्धि का शमन होता है । बस, ये चार बातें मानना।''

''महाराज ! मैं आपको वचन देता हूँ, आपकी चारों बातें मानूँगा।''

महात्मा ने मंत्र दिया और जप की विधि बता दी। घाटम उद्यमी था, साहसी था, निर्भीक था। जो काम करता था, बराबर तत्परता से करता था। जप करने से उसके पाप-संस्कार नष्ट होने लगे और सात्त्विक परमाणु बनने लगे। कितना भी बड़ा पापी हो, घाटम हो या उसका बाप हो, जप और ध्यान करने से उसके पाप-संस्कार नष्ट हो जाते हैं।

एक बार घाटम की योजना कहीं पर डाका डालने की थी। इतने में आश्रम में उत्सव होने की बात याद आयी। घाटम ने सोचा, 'गुरु के आश्रम जाता हूँ क्या ले जाऊँ ? गुरुजी जिस

सिपाहियों ने देखा कि घोड़े के पदचिह्न यहाँ समाप्त होते हैं, घोड़ा भी बँधा है परंतु हमारा घोड़ा नील वर्ण था, यह तो सफेद वर्ण का है !

घोड़े पर जाते हैं वह घोड़ा साधारण है। दो पैसे का राजा अच्छे घोड़े पर सवारी करता है और मेरे गुरु का घोड़ा साधारण ! मैं गुरुजी को बढ़िया घोड़ा भेंट में दूँगा। जयपुर नरेश का घोड़ा बहुत बढ़िया है। पहले उसी घोड़े का डाका डालेंगे और गुरुजी को भेंट में देंगे।'

वह बहादुर पहुँच गया जयपुर नरेश के अस्तबल में। सबसे अच्छा घोड़ा खोला और उस पर सवार हो चल पड़ा।

सिपाहियों ने पूछा : ''कौन हो ?''

''मैं घाटम हूँ।''

सिपाहियों ने सोचा, 'घाटम तो डाकू है ! यह राजा का कोई खास आदमी होगा, नया-नया आया लगता है। राजासाहब ने घोड़ा लाने के लिए भेजा होगा। छोड़ो इसे।' और कहा : ''साहब ! माफ करिये, जाइये।''

घाटम घोड़े को भगाते-भगाते रवाना हुआ। इधर राजा ने सैर करने के लिए घोड़ा मँगवाया।

सिपाहियों ने कहा : ''घोड़ा तो आपने पहले ही मँगवा लिया था।''

राजा : ''मैंने तो नहीं मँगवाया था। अरे मूर्खो ! घोड़ा कैसे चला गया ? कौन ले गया ?''

''कोई नया आदमी था। हमने पूछा कि 'कौन ?' हो तो बोला : 'घाटम हूँ।' यदि घाटम होता तो सत्य थोड़े ही बोलता ?''

किंतु घाटम ने गुरु को वचन दिया था कि 'सत्य बोलूँगा।' वचन-पालन से घाटम को रास्ता मिल गया। उधर घाटम गुरु के आश्रम की ओर घोड़ा भगाये जा रहा था।

राजाज्ञा से सिपाहियों ने घोड़े की खोज में घोड़े के पदचिह्नों पर अपने घोड़े भगाये।

रास्ते में आरती हो रही थी। घाटम ने देखा तो गुरुजी का वचन याद आया : 'आरती के दर्शन करना।' घोड़ा पेड़ से बाँध दिया और आरती देखने गया।

इतने में घोड़े के पदचिह्न देखते-देखते सिपाहियों की टुकड़ी वहाँ पहुँच गयी। टुकड़ी ने देखा कि घोड़े के पदचिह्न यहाँ समाप्त होते हैं, घोड़ा बँधा है परंतु हमारा घोड़ा नील वर्ण था, यह तो सफेद वर्ण का है ! इतने में घाटम आया।

सिपाहियों ने पूछा : ''तुम घाटम हो ?''

''हाँ, मैं ही घाटम हूँ। मैं ही घोड़ा ले आया था और आप लोगों को बताया भी था।''

''तुम मजाक करते हो ?''

अभी तक घाटम की नजर घोड़े पर नहीं पड़ी थी। सिपाहियों ने कहा : ''तुम चले थे नीले रंग का घोड़ा लेकर, यह सफेद कैसे हो गया ?''

घाटम का हृदय अहोभाव से भर गया, 'अरे, मेरे प्रभु ! मेरी रक्षा करने के लिए आपने घोड़े का रंग बदल दिया ! मेरे गुरुदेव ! मैंने आपको वचन दिया था, सत्य बोलूँगा। मैंने वचन निभाया तो आपकी कृपा ने चमत्कार कर दिया। मैं पापी, अपराधी, चोर, डाकू हूँ लेकिन मेरे गुरुदेव ! आपने मुझे उठाने में देर नहीं की।' भगवान और गुरु के पवित्र चिंतन में घाटम की आँखों से आँसू बहने लगे।

इतने में सिपाहियों की दूसरी टुकड़ी भी आ पहुँची। सबने देखा कि घाटम की आँखों में आँसू ! और घाटम ध्यान में मग्न ! कुछ सिपाहियों को दौड़ाया कि जाकर राजासाहब को सारी घटना सुनाओ।

राजासाहब भी आये। वे चकित-से देख रहे थे कि घोड़े का रंग सफेद हो गया है ! उन्होंने पूछा :

''घाटम ! क्या बात है ?''

घाटम ने उनको सारी बात बतायी और कहा : ''राजन् ! मैंने गुरुदेव को दिया हुआ वचन निभाया। अब मुझे जेल में डालो तो डालो, मैं वही घाटम हूँ जिससे आप भी काँपते थे।''

राजा : ''अब तुम डाकू घाटम नहीं हो। तुम सद्गुरु के सत्‌शिष्य हो। मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, मुझे भी अपने गुरुदेव के दर्शन कराओ। तुम प्रसिद्ध डाकू हो तो हम छुपे चोर हैं। राजनीति छल-कपट से भरी होती है। तुमने २-५ को मारा होगा, हमने तो कइयों को मारा है। हम भी तो पापी हैं। हमें भी अपने गुरुदेव के पास ले चलो।''

घाटम जयपुर नरेश के साथ अपने गुरु के चरणों में पहुँच गया। कैसी है गुरुकृपा ! चोर, डाकू भी जब सद्गुरु का आश्रय लेता है तो श्रद्धा, चिंतन के बल से तर जाता है, फिर औरों की तो बात ही क्या है ? जरूरत तो बस, गुरुवचनों को मानने की है।

आज्ञा सम नहीं सुसाहिब सेवा...

निश्चय और अंतर्दृष्टि

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

ईश्वर के सिवाय जो कुछ पाओगे वह सब छूट जायेगा, यह पक्का जान लो। शाश्वत के अतिरिक्त जो कुछ भी पाओगे वह नश्वर होगा और नश्वर नाश को प्राप्त करायेगा। अतः शाश्वत को पाने का पक्का निश्चय कर लो और इसके साथ-साथ आप अंतर्दृष्टि विकसित करो कि 'नश्वर क्या है और शाश्वत क्या है ?' आ-आकर जो चला जाता है, बन-बनकर जो बिगड़ जाता है, मिल-मिलकर जो छूट जाता है - वह नश्वर है। पर जो कभी नहीं छूटता, कभी नहीं बिगड़ता, कभी नहीं बदलता - वह कौन है ? उसे खोजो... ऐसा अभ्यास करो। **जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।**

आपके जीवन में निश्चयबल बढ़े और अंतर्दृष्टि विकसित हो। आप अंतर्दृष्टि और निश्चय इन दोनों को ऐसा बना लो कि इसी जन्म में परम ऊँचाई को पा लो ताकि फिर कभी पतन न हो; फिर गिरने का दुर्भाग्य न आये। फिर पराधीनता का मुख न देखना पड़े। फिर प्रकृति किसी माँ के गर्भ में उलटा न लटकाये।

अपने को आम आदमी के साथ मिलाकर परिस्थितियों के बहाव में मत बहो। हजारों जन्मों का काम आपको एक ही जन्म में पूरा करना है। अतः आपकी समझ, अंतर्दृष्टि और निश्चय आम आदमी से विलक्षण होने चाहिए। अपने को दूसरों के तराजू में मत तोलो, दूसरों के 'फ्रेम' में फिट होने की कोशिश न करो कि 'उनको अच्छा लगे ऐसा मैं बनूँ।' बनो मत। बनोगे तो बिगड़ोगे। आप तो अपने आपमें जगो। किसीका अनुकरण करने के चक्कर में मत पड़ो। किसीकी अधीनता मत स्वीकारो।

कोई निंदा करके दबाकर आपको अधीन बनाता है तो कोई प्रशंसा करके। अगर आप उनसे पूछो तो उनका भाव ऐसा नहीं होगा पर सृष्टि का व्यवहार ही ऐसे चलता है। तुम अपने प्रकाश में जीयो, अपनी ज्योति में जीयो।

आत्मारामी गुरु के द्वारा अंतरंग साधना मिल जाय और ईश्वरप्राप्ति का निश्चय पक्का हो जाय तो फिर इस जीवन की शाम होने के पहले तो क्या, जीवन की दुपहरी में ही जीवनदाता का साक्षात्कार हो जाता है। कइयों ने किया है। यह मार्ग ऊँचा है, बड़ा विलक्षण है पर इतना कठिन नहीं है जितना लापरवाह लोगों को लगता है, हलके विचारवालों को लगता है। जिसके विचार ऊँचे हैं और इरादा पक्का है उसके लिए यह रास्ता कठिन नहीं है।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

कोशिश करने से जो भी मिलेगा वह होगा संसार और वह पराधीनता, जड़ता, दीनता तथा शक्तिहीनता देकर अंत में छूट जायेगा। संसार की चीजें हर जन्म में पाते आये हो किंतु क्या मिला ? हर बार वही धोखा... अपने को न जानकर केवल माया-मोह का मिथ्या अभिमान और अहंकार।

वास्तव में प्राप्त कुछ नहीं होता, प्रतीत होता है। 'मेरे पास गाड़ी है... मेरे पास १० कारखाने हैं...' ऐसा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्न में बहुत कुछ प्रतीत होता है किंतु आँख खुलती है तो कुछ दिखायी नहीं देता। सकाम प्रवृत्ति से सामर्थ्य का ह्रास होता है और अंत में जीव मौत के मुख में चला जाता है। तो क्या प्रवृत्ति न करें ? प्रवृत्ति तो करो परंतु आवश्यकता की पूर्ति के लिए करो, इच्छा की पूर्ति के लिए नहीं।

एक होती है इच्छा, दूसरी होती है आवश्यकता। जैसे पानी पीकर प्यास बुझाना, भोजन खाकर पेट भरना - यह आवश्यकता है किंतु खा-पीकर मजा लेना - यह इच्छा है।

[प्र]वृत्ति न बढ़ायें, परमात्म-विश्रांति पायें...

जिसे छोड़कर एक दिन मरना है उसीको माँग रहे हैं ! जिसे छोड़कर जाना है उसीके पीछे भाग रहे हैं ! हम मंदिर या आश्रमों में जाते हैं तो वहाँ भी ईश्वर की प्रीति नहीं माँगते, जगत की वस्तुएँ माँगते हैं ।

धूप-वर्षा आदि से रक्षा के लिए घर होना आवश्यकता है परंतु घर में ऐसा फर्नीचर हो, वैसा हो - इस इच्छापूर्ति में खप जाते हैं लोग।

'हे धनवानो ! हे बुद्धिमानो ! आलीशान महल, बँगला, बगीचे को सजाने में अपनी बुद्धि और शक्ति का ह्रास मत करो । ये तुम्हारे साथ आनेवाले नहीं हैं । इच्छा के गुलाम बनकर आवश्यकताएँ मत बढ़ाओ । आवश्यकताएँ कम करो तो प्रवृत्ति कम हो जायेगी और समय बचेगा । वह समय सच्चिदानंद की प्राप्ति में लगाओ।

फालतू इच्छाओं के कम होते ही भोजन भी स्वास्थ्यप्रद करने लगोगे, जिससे स्वास्थ्य ठीक रहेगा । स्वादवृत्ति से भोजन करोगे तो बीमारी जल्दी आयेगी । आइसक्रीम खा ली और कुछ देर बाद गरमागरम चाय पी ली तो दाँत हाथ में आ जायेंगे । अतः बिनजरूरी इच्छाओं के गुलाम बनकर खपना नहीं चाहिए।

प्रवृत्ति करो तो निष्काम भाव से करो, ईश्वरप्रीत्यर्थ करो, समाज के हित में करो । इच्छा-वासना के अधीन होकर की गयी प्रवृत्ति प्राप्त सामर्थ्य का ह्रास करती है और अपने पास कुछ नहीं रहता। केवल प्रतीति होती है कि 'मेरा है, मेरा है...'

प्रतीत वस्तु को सत्य माना और उसे पाने की इच्छा की तो प्रवृत्ति का जन्म होता है । संसार सत्य प्रतीत हो रहा है - उसको पाने की इच्छा की तो प्रवृत्ति का जन्म होगा और जो सदा प्राप्त है उसमें विश्रांति पाओ तो प्राप्त की प्राप्ति हो जायेगी । प्रवृत्ति नहीं, आत्मविश्रांति मिलेगी । आत्मविश्रांतिवाला मन सहज में प्रवृत्ति करेगा तो जगत के लिए हितकारी होगा।

हम मंदिर या आश्रमों में जाते हैं तो वहाँ भी ईश्वर की प्रीति नहीं माँगते, जगत की वस्तुएँ माँगते हैं, 'हे प्रभु ! मुझे नौकरी मिल जाय... मेरी पदोन्नति हो जाय... मेरा इतना काम हो जाय...' मानों ईश्वर और गुरु के लिए तलाकपत्र लेकर जाते हैं कि हमें आप नहीं चाहिए बल्कि हमारी वासना के अनुरूप चीज व परिस्थिति चाहिए। प्रतीति की वासना मंदिर अथवा आश्रम में भी ईश्वर से प्रेम नहीं करने देती, आत्मविश्रांति नहीं पाने देती।

जिसे छोड़कर एक दिन मरना है उसीको माँग रहे हैं ! जिसे छोड़कर जाना है उसीके पीछे भाग रहे हैं ! कोई कहे कि 'बाबाजी ! ऐसा नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा ?' अरे ! बहुत बढ़िया काम चलेगा। बहुत बढ़िया काम चलता था राम-राज्य में। लोग आत्मविश्रांति में रहते थे। घरों में ताले नहीं लगाने पड़ते थे ! क्या वे भूखे मरते थे ? सिद्धार्थ राजपाट छोड़कर चल दिये तो क्या भूखे मर गये ? नहीं, प्रतीति से आसक्ति हटाकर प्राप्ति में विश्रांति पायी तो भगवान बुद्ध होकर पूजे जा रहे हैं सिद्धार्थ ! प्रतीति का आकर्षण छोड़कर प्राप्ति में विश्रांति पायी तो वर्धमान भगवान महावीर हो गये ! प्रतीति की इच्छा छोड़कर कीर्तन-भजन के द्वारा प्राप्ति में सुखी होने लगी तो राजरानी मीरा भक्तानी मीरा हो गयी...

जो सदा प्राप्त है उसमें टिकने का सुगम-सुंदर उपाय है कि जगत की आसक्ति मिटाते जायें, इच्छा-वासना से निवृत्त होते जायें और सदा प्राप्त परमात्मा में शांत होते जायें।

ॐ... ॐ शांति...

ॐ... ॐ निर्वासना-निरासक्ति-निरहंकारिता...

ॐ नारायण... ॐ... ॐ

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते । यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥

'जिस मनुष्य के आसपास औषधिरूप गूगल की श्रेष्ठ सुगंध व्याप्त रहती है, उसे कोई रोग पीड़ित नहीं करता। दूसरों के द्वारा दिये गये अभिशाप भी उसे स्पर्श तक नहीं कर पाते।' (अथर्ववेद : १९.३८.१)
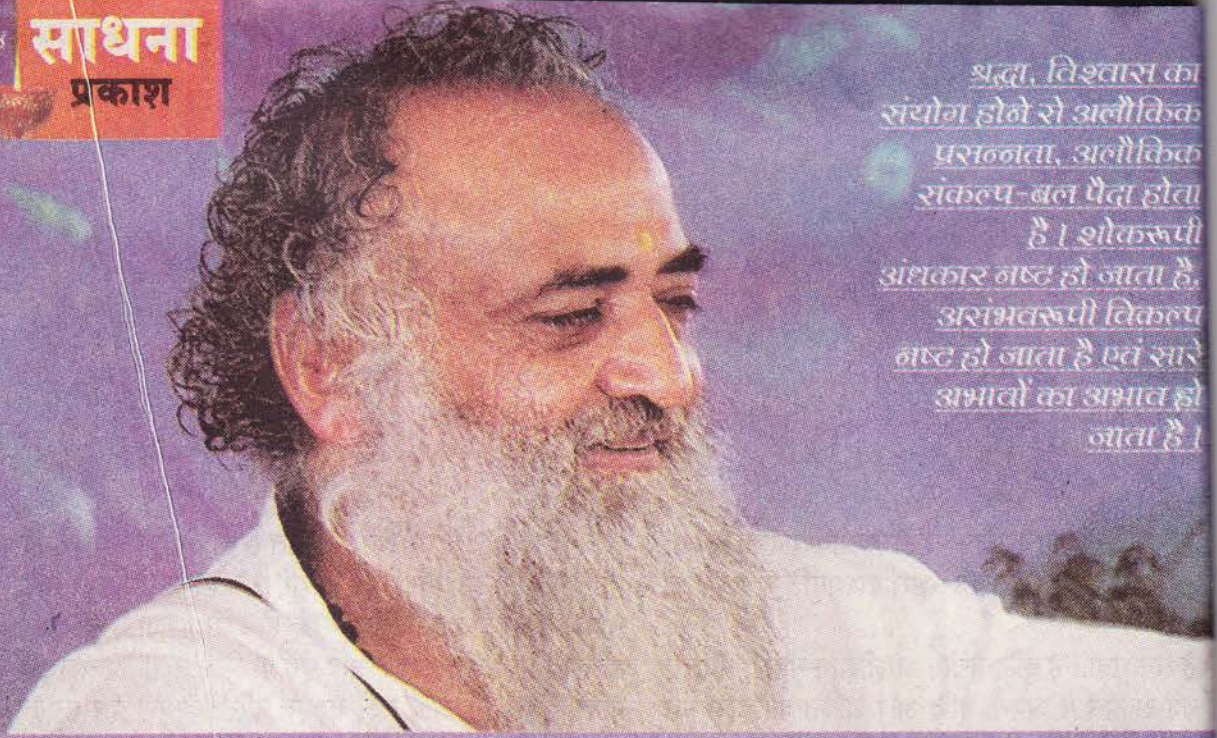
श्रद्धा का अद्भुत फल

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

वेदों के 'पुरुष सूक्त' में आता है : 'हे श्रद्धारूपी माँ ! तू हमारे हृदय में सदा निवास करना।'

प्रातःकाल, मध्याह्नकाल व सायंकाल की संध्या में भी यह प्रार्थना की गयी कि 'हे श्रद्धारूपी माँ ! तू हमारे हृदय में स्थिर रहना।'

'नारद पुराण' में आता है :

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः ।
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः ॥

'श्रद्धापूर्वक आचरण में लाये हुए सब धर्म मनोवांछित फल देनेवाले होते हैं । श्रद्धा से सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान श्रीहरि संतुष्ट होते हैं।' (४.१)

एक होती है नित्य में श्रद्धा, दूसरी होती है अनित्य में श्रद्धा । शरीर, संसार और संसार का भोग सुख-दुःख - ये अनित्य हैं । आत्मा-परमात्मा और गुरु का वास्तविक स्वरूप - ये नित्य हैं । अपना वास्तविक स्वरूप नित्य है । आप अपने वास्तविक स्वरूप में श्रद्धा करिये, अपने गुरु में श्रद्धा करिये, सत्शास्त्र में श्रद्धा करिये, ईश्वर में श्रद्धा करिये।

हम मूर्ति में श्रद्धा करते हैं तो श्रीहरि उसमें से प्रकट हो सकते हैं तो जिनके दिल में श्रीहरि प्रकट हुए हैं उन विद्यमान महापुरुषों में श्रद्धा नहीं करेंगे तो कहाँ करेंगे ? गुरु में श्रद्धा नहीं होगी तो भगवान में श्रद्धा कैसे होगी ? गुरुतत्त्व का ज्ञान नहीं होगा तो भगवत्तत्त्व का ज्ञान कैसे होगा ? गुरु में श्रद्धा नहीं है तो घुट-घुटकर मरने के सिवाय क्या है ?

मैं अगर श्री लीलाशाह बापू में श्रद्धा नहीं करता, शास्त्रों में श्रद्धा नहीं करता तो बुरी तरह भटक जाता । मुझे तो ऐसे लोग मिले थे जो कहते कि भगवान की भक्ति करो तो तीन जन्म में मुक्ति होगी । ऐसे लोग भी मिले, जो ऐसी साधना सिखाते कि १२ साल शरीर के एक चक्र में, १२ साल दूसरे चक्र में, फिर १२ साल तीसरे चक्र में साधना करो...

परंतु मुझे शास्त्रों व सद्गुरु में श्रद्धा थी कि 'अष्टावक्र की कृपा से जनक को घोड़े की रकाब में पैर डालते-डालते हे परमात्मा ! तू मिल सकता है, शुकदेवजी की कृपा से परीक्षित को तू ७ दिन के सत्संग में मिल सकता है, महावीर को तू १२ वर्ष में मिल सकता है, बुद्ध को ७ वर्ष में मिल सकता है, तेरे लिए समय की अवधि नहीं है । मुझे तेरा दीदार करा दे, मेरे प्रभु ! मेरे देव !!'

ईशकृपा बिन गुरु नहीं गुरु बिना नहीं ज्ञान ।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं गावहिं वेद पुरान ॥

ईश में श्रद्धा थी तो गुरु मिले, गुरु में श्रद्धा थी तो ईश्वर का स्वरूप समझ में आ गया।

भगवान का स्वरूप सहज है । भगवान हमको कभी छोड़ नहीं सकते तथा हम भगवान को नहीं छोड़ सकते, फिर भी

अभागे संसार की आसक्ति ने, विषय-विकारों ने हमें पचा-पचाकर मारा है और पचा-पचाकर जन्माया है।

माँ के गर्भ में से आये तो क्या बिना पके आये ? क्या बिना पके बापूजी या बेटाजी बने ? तुम क्या बिना पके आये हो ? यह तो ठीक है कि गर्भावस्था की याद भूल गये नहीं तो गर्भाग्नि ने ऐसा पकाया है कि ईंट तो ७ दिन में पकती है परंतु माँ-बाप का रज-वीर्य ९-९ महीने पकता है, तब हड्डियाँ बनकर, बालक बनकर आप-हम जन्मते हैं।

जिनके जीवन में परमात्मा में, गुरु में श्रद्धा नहीं है वे बाहर से कितने भी सुंदर दिखें, टिप-टाप दिखें, वैभववान दिखें, किंतु है क्या ? जैसे बाहर से दिखे सोने का कलश और अंदर भरा हो विष ! ऐसे ही अंदर भरा है काम-क्रोध और बाहर से केमिकल का मेकअॅप लगाकर शरीर सुंदर-सुरूप दिखे तो क्या करेंगे ? एक-दूसरे को शोषित करेंगे, एक-दूसरे को अशांति देंगे, एक-दूसरे को बुढ़ापा देंगे...

आपके जीवन में कितनी भी कुशलता हो परंतु श्रद्धा नहीं है, शास्त्र की सूझबूझ नहीं है, गुरु की सूझबूझ नहीं है तो हाड़-मांस के शरीर को 'मैं' मानने की बेवकूफी बनी रहेगी । शरीर के लंबे-चौड़ेपन को अपना लंबा-चौड़ापन मानेंगे । शरीर की बीमारी को अपनी बीमारी मानेंगे, शरीर की मौत को अपनी मौत मानेंगे । मन के दुःख को अपना दुःख मानेंगे । मन की चिंता को अपनी चिंता मानेंगे... अगर श्रद्धा-विश्वास और सत्संग नहीं है तो ये बेवकूफियाँ मिटेंगी भी नहीं।

शरीरों में श्रद्धा कर-करके तो खप जायेंगे । सारा संसार इसीमें खपा जा रहा है । अतएव शरीर जिससे दिखते हैं, उस आत्मा में श्रद्धा हो जाय, परमात्मा में श्रद्धा हो जाय, परमात्मा में प्रीति हो जाय, परमात्मा को दिखानेवाले सद्गुरु में श्रद्धा हो जाय...

प्रार्थना करो : 'हे श्रद्धा देवी ! अनित्य शरीर में नित्य आत्मा का दीदार करा दे... मरणधर्मा शरीर में जो शाश्वत प्रभु छिपे हैं उनके दर्शन करा दे... हे श्रद्धा देवी ! अब तू हमें प्रभु में श्रद्धा करवा दे...'

जो शरीर से तप करा दे, मन से और वाणी से तप करा दे, वह सात्त्विक श्रद्धा है । सात्त्विक श्रद्धा शारीरिक, मानसिक और वाचिक तप कराकर साधक के दोषों को मिटाके परम तत्त्व परमात्मा में यहीं जाग्रत कर देती है।

राजसी श्रद्धा क्या है ? शरीर में 'मैं'पना और वस्तुओं में 'मेरा'पना होना तथा कुछ अच्छा-बुरा करके यहाँ और वहाँ मजा लेने में लगे रहना । राजसी श्रद्धावाले सोचते हैं कि 'कुछ भी हो जाय, बस, अपने को मजा आ जाय।'

तामसी श्रद्धा शरीर में ही भटका देती है । 'मैं धनी हूँ, मैं विद्वान हूँ, मैं सत्तावान हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, मैं उसको ऐसा कर दूँगा, वैसा कर दूँगा, वह क्या समझता है ?' - इन्हींमें तामसी श्रद्धावाला उलझ जाता है।

सात्त्विक श्रद्धा है तो विवेक-विचार पैदा होगा, षट्संपत्ति आयेगी।

१. शम - मन को रोकना।

२. दम - इंद्रियों को रोकने का बल।

३. तितिक्षा - कष्ट सहन करने की शक्ति।

४. उपरति - जो छोड़ दिया है, शराब-कबाब, ज्यादा बोलना या फिल्म देखना आदि, उसे फिर न करना, उसमें रुचि न होना।

५. श्रद्धा - ईश्वर, गुरु में श्रद्धा।

६. समाधान - गुरु, शास्त्र या ईश्वर के विरुद्ध कोई कुछ बकता है या मन में आता है तो अनुकूल विचार करके मन का समाधान करना।

ये षट्संपत्ति हैं ।

सात्त्विक श्रद्धा सदाचरण की तरफ रुचि बढ़ायेगी और फल की इच्छा के बिना भी सत्कर्म करने में रुचि बढ़ायेगी।

अष्टावक्रजी का काला शरीर, टेढ़ी टाँगें, नाटा कद है किंतु वास्तविक ज्ञान में 'मैं'पने की स्थिति है तो १२ साल के अष्टावक्रजी गुरु हैं और विशालकाय, विशाल राज्य के धनी राजा जनक सत्शिष्य बनकर अपना सौभाग्य बना रहे हैं । यह सात्त्विक श्रद्धा है, परम श्रद्धा है, श्रद्धा की पराकाष्ठा है। इसको पाने की तड़प हो जाय, बस।

उन्नति के लिए सात्त्विक श्रद्धा परम हितकारी और जरूरी है । श्रद्धा जीवन की सबसे कोमल, मधुर व सर्वश्रेष्ठ रसमय, साफल्यदायी रसायन है,

शेष पृष्ठ क्र. २५ पर

श्रद्धा बिना धर्म नहीं होई... श्रद्धा के बिना धर्म नहीं होता और विश्वास के बिना सिद्धि नहीं मिलती।
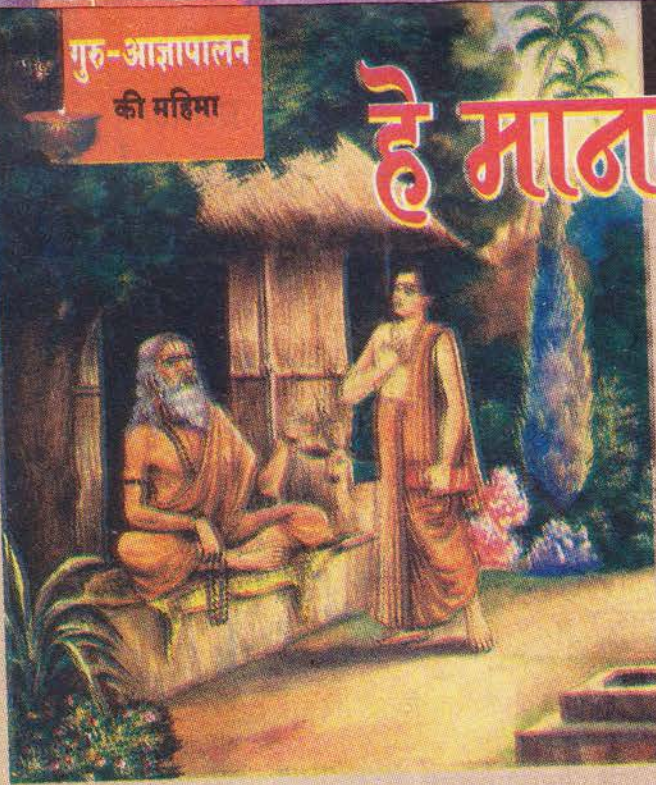
(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

'ब्रह्म पुराण' में आता है :

मनुष्यैः क्रियते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः।
(२७.७०)

मनुष्य जो (श्रेष्ठतम कार्य) कर सकता है, जिस ऊँचाई को पा सकता है, वह सुर और असुरों के लिए भी संभव नहीं है। ऐसा सामर्थ्य भगवान ने मनुष्य में भरा है। मनुष्य दृढ़ निश्चय कर तदनुसार कर्म करे तो भगवान का सखा बन सकता है, भगवान का प्रेमी बन सकता है, भगवान का मित्र बन सकता है, भगवान का पिता बन सकता है, भगवान का गुरु तक बन सकता है परंतु यही मनुष्य इस संसार का मजा लेने में लग जाय, जो मन में आये ऐसा करने लगे तो उसका पतन भी उतना ही हो जाता है... जैसे राजा नृग दूसरे जन्म में गिरगिट बन गये थे, राजा भरत हिरण बन गये थे और अजगर बनकर राजा अज लम्बे समय तक दुःख भोगते रहे।

मनुष्य शास्त्र और सत्संग द्वारा कुछ अच्छा समझकर उस पर दृढ़ता से चले तो महान आत्मा बन जाय, दिव्य स्वरूप ईश्वर का अनुभव कर ले। भगवान श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं :

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या
विद्याकुठारेण शितेन धीरः।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः
सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥

'उद्धव ! तुम इस प्रकार गुरुदेव की उपासनारूप अनन्य भक्ति के द्वारा अपने ज्ञान की कुल्हाड़ी को तीखी कर लो और उसके द्वारा धैर्य एवं सावधानी से जीवभाव को काट डालो। फिर परमात्मस्वरूप होकर उस वृत्तिरूप अस्त्रों को भी छोड़ दो और अपने अखंड स्वरूप में ही स्थित हो रहो।'

(श्रीमद्भागवत : ११.१२.२४)

भगवान श्रीकृष्ण के गुरु थे सांदीपनि। सांदीपनि अपने गुरु के आज्ञाकारी-वफादार शिष्य थे। गुरु के आश्रम में रहते तो गुरु की छाया बन के रहते थे। वैसे तो सांदीपनि बहुत बुद्धिमान भी नहीं थे और एकदम भोंदू भी नहीं थे। मध्यम विद्यार्थी थे लेकिन एक सद्गुण था कि गुरु की आज्ञा पालने में तत्पर रहते थे।

शास्त्र कहते हैं कि गुरु यदि सद्गुरु हैं तो उनकी आज्ञा के आगे कुछ विचारणीय-अविचारणीय नहीं होता। सद्गुरु की आज्ञा मिली तो बस बात हो गयी पूरी। फिर 'यह उचित है, यह अनुचित है' - ऐसा शिष्य को सोचना नहीं होता।

गुरु की आज्ञा पालने से उन पर गुरुजी की विशेष कृपा भी रहती थी, जिससे दूसरे विद्यार्थी उनसे ईर्ष्या करते थे। सांदीपनि अपने गुरु की आज्ञा मानते थे क्योंकि वेद, उपनिषद् और ओंकार की महिमा जाननेवाले गुरु थे, आध्यात्मिक बल के धनी थे। कोई पगारदार गुरु नहीं थे, आत्मा-परमात्मा का खजाना लुटानेवाले गुरु थे। ...तो सांदीपनि गुरु की सेवा तत्परता से करते थे। एक दिन गुरु ने देखा कि और विद्यार्थी आ रहे हैं तो सांदीपनि से कहा : ''सांदीपनि ! यह मेरा बेटा है न, इसे उठाकर कुएँ में फेंक

सामर्थ्य भरा है...

दे।'' कुआँ अधिक गहरा नहीं था। सांदीपनि ने गुरुपुत्र को उठाकर कुएँ में फेंक दिया। यह देख दूसरे विद्यार्थी दौड़कर आये और गुरुपुत्र को पानी से बाहर खींच लिया। फिर सांदीपनि की ठीक से धुलाई की।

''गुरुपुत्र की हत्या करता है ? तुझे शर्म नहीं आयी ? गुरुपुत्र को फेंक दिया कुएँ में ? तेरे बाप का राज चलता है ? हमने देखा कि गुरुजी ने ऐसा करने का संकेत किया था। गुरुजी तो कहते हैं पर ऐसा करते हैं क्या, मूर्ख ! अरे हत्यारे ! अरे गुरुद्रोही !'' आदि आदि सुनाते जाते और मारते जाते। ऐसा करके एक-एक विद्यार्थी ने अपना वैर निकाला। फिर गुरुजी बीच में पड़े कि ''रहने दो, रहने दो; बहुत हो गया।''

कुछ समय बीता। एक बार सब शिष्य जंगल से गुरुजी का कुछ काम निपटाकर आ रहे थे। गुरुजी ने कहा : ''सांदीपनि ! बेटा, जल्दी कर-जल्दी, यह जो मेरा झोंपड़ा है न घास-फूस का, इसे आग लगा दे।''

सांदीपनि ने गुरु के झोंपड़े को आग लगा दी। लड़के आये, दौड़-दौड़ के कुएँ से पानी लाकर आग तो बुझा दी, फिर सांदीपनि की धुलाई शुरू कर दी कि 'पहले तो गुरुजी के बेटे को कुएँ में डाला था, अब गुरुजी का घर जलाता है ?' गुरुजी बैठकर सब देख रहे थे।

सांदीपनि सोचते हैं, 'मार भले ही शरीर को पड़ रही है लेकिन आज्ञापालन तो हो रहा है न !' सांदीपनि की सहनशक्ति और ज्ञान कैसा था ! कर्तव्य निभाने का अंदर में बल था और यह नहीं कहते कि 'गुरुजी ने कहा था।' गुरुजी के ऊपर नहीं ढोलते। ऐसा गुरुभक्त ! अरे मानव ! तेरे में कितनी योग्यता है !

सांदीपनि जानते थे कि ओंकार का जप करनेवाले और आत्मा-परमात्मा को ठीक से जाननेवाले मेरे गुरुदेव जो भी करेंगे, अच्छा करेंगे। दुनिया की नजर में देखा जाय तो लोग कहेंगे : 'यह विद्यार्थी मूर्ख है।' मूर्खों की नजर में लगेगा कि सांदीपनि मूर्ख है किंतु उन सभी मूर्खों को कान खोलकर सुन लेना चाहिए कि सांदीपनि जो आत्मा-परमात्मा को पाये हुए महापुरुषों की महिमा जानते थे, वह आज के पढ़े-लिखे लोग नहीं जानते।

पढ़ाई पूरी हुई। सब शिष्य गुरु से आशीर्वाद लेकर अपने-अपने घर गये, सांदीपनि भी गये। समय बीता, गुरुजी बीमार पड़े और गुरुजी ने घोषित किया : ''जो हमारे खास विद्यार्थी हैं, उन्हें दर्शन करने हों तो आ जायें। अब हमको यह देह छोड़नी है।''

जो विद्यार्थी पहले उनके पास पढ़ने के लिए रह चुके थे, वे गुरुजी को प्रणाम करने, उनका समाचार पूछने दूर-दूर से आये। गुरुजी ने कहा : ''तबीयत तो तबीयत है। शरीर मरणधर्मा है, इसे कितना सँभालना ? जिसको सँभालना था उसे सँभाल लिया इसलिए यह जन्म सफल हुआ। जिसकी मृत्यु कभी नहीं होती वह मेरा आत्मा-मैं हूँ और जो मरनेवाला है, नश्वर है वह मेरा शरीर है।''

सबको विदाई देते समय गुरुजी ने किसीको अपना कमंडल दिया तो किसीको माला दी। इसी तरह एक-एक करके आसन, थाली, कटोरी, पुस्तक, बिछौना, तकिया, तौलिया आदि वस्तुएँ भी बाँट दी। मिली हुई वस्तु सबने आदर से ली कि 'गुरुजी की प्रयोग की हुई, भगवद्भाव की तरंगों का स्पर्श की हुई वस्तु है।' अपनी-अपनी वस्तु को सिर पर चढ़ाते-चढ़ाते श्रद्धा-भक्ति से सब गये परंतु सांदीपनि बैठे रहे।

गुरु ने कहा : ''बेटा ! तुझे देने जैसा अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। जो था मैंने बाँट दिया, तुझे क्या दूँ ? तूने मेरी आज्ञा का ऐसा पालन किया है कि तेरा मन तेरा दास बन जाय और प्रकृति तेरी दासी बन जाय... जितना गुरु का दास पक्का उतनी कुदरत उसकी दासी पक्की ! और कुदरत का स्वामी, विश्वनियंता, रोम-रोम में रमनेवाला, ब्रह्मांड में व्यापक ईश्वर जब धरती पर आयेगा न अवतार लेकर, मानवरूप लेकर तो वह भी तेरा दास बन जायेगा, इतना-सा आशीर्वाद देता हूँ बेटा ! कुदरत दास बने तो क्या, विश्व का स्वामी भी तेरा दास बन जायेगा।''

और बाद में भगवान श्रीकृष्ण सांदीपनि ऋषि के विद्यार्थी व दास बनकर रहे।

जो मनुष्य सुख आये तो उसके आगे छोटा बन जाता है, दुःख आये तो तुच्छ बन जाता है, वही अगर सत्संग द्वारा, किसी सद्वृत्ति और नियम-निष्ठा द्वारा दृढ़ निश्चय करे तो सुख-दुःख को देखनेवाला आत्मा, परब्रह्म परमात्मा उसके हृदय में प्रकट हो सकता है और इससे बढ़कर उसको भगवान की कोई लीला देखनी हो तो भगवान का सखा, संबंधी, प्रेमी, स्नेही बन सकता है, साकार रूप में भगवान को प्रकट कर सकता है। कितना सामर्थ्य भरा है मनुष्य में ! बस, किसी ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु से दीक्षा अर्थात् जीवन जीने की सही दिशा पाकर अपने आंतरिक सामर्थ्य को जगानेभर की देर है...

मानवमात्र का ग्रंथ है 'श्रीमद्भगवद्गीता'

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

संपूर्ण विश्व में 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा धर्मग्रंथ या शास्त्र नहीं है, जिसकी व्यापक रूप से विश्वभर में जयंती मनायी जाती हो। मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत युद्ध से पूर्व अर्जुन का विषाद दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से उपनिषदों का अमृत 'श्रीमद्भगवद्गीता' के रूप में प्रकट हुआ, अतः यह दिन 'गीता-जयंती' के रूप में मनाया जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं, भारतवासियों के लिए ही नहीं, मानवमात्र के लिए उपयोगी है। किसी भी देश, जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ण, आश्रम का व्यक्ति क्यों न हो, वह नियमित रूप से इस गीताग्रंथ का थोड़ा-सा भी अध्ययन करे तो उसके जीवन में दैवी गुणों का विकास होने लगता है, इसके अतिरिक्त और भी अनेक आश्चर्यजनक लाभ मिलते हैं।

मेरे गुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज कहते थे :

''जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए गीताग्रंथ अद्भुत है। विश्व की ५७८ भाषाओं में गीता का अनुवाद हो चुका है। हर भाषा में कई चिंतकों, विद्वानों एवं भक्तों ने इसकी मीमांसाएँ की हैं और अभी भी हो रही हैं, होती रहेंगी क्योंकि इस ग्रंथ में किसी भी देश, जाति के तमाम मनुष्यों के कल्याण की अलौकिक सामग्री भरी हुई है। अतः हम सबको गीता-ज्ञान में अवगाहन करना चाहिए। भोग-मोक्ष, निर्लेपता, निर्भयता आदि तमाम दिव्य गुणों का विकास करानेवाला यह गीताग्रंथ विश्व में अद्वितीय है।''

गीता का लक्ष्य है मानवमात्र का परम कल्याण करना। ईश्वरप्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का परम उद्देश्य है लेकिन भ्रमवश मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं के वशीभूत होकर नाना प्रकार से अपनी इंद्रियों को तृप्त करने के प्रयासों में उलझ जाता है परंतु सिवाय दुःखों के उसे कुछ प्राप्त नहीं होता। गीता इसी भ्रम-भेद को मिटाकर एक अत्यधिक सरल, सहज व सर्वोच्च दिव्य ज्ञानयुक्त पथ प्रदर्शित करती है। गीता के वचनों का आचमन करने से भोग व मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

किसी मरणासन्न व्यक्ति के निकट बैठकर उसे गीता-श्रवण कराया जाय तो मरणोपरांत उसकी सद्गति होती है।

कुल मिलाकर गीता की महत्ता पर जितना भी प्रकाश डाला जाय, कम ही है। अन्य शास्त्रों ने भी गीता की महिमा गायी है। 'वाराह पुराण' में विष्णु भगवान पृथ्वी देवी से कहते हैं :

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान्पालयाम्यहम् ॥

'मैं श्रीगीता के आश्रय में रहता हूँ, श्रीगीता मेरा उत्तम घर है और श्रीगीता के ज्ञान का आश्रय करके मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।'

अध्याये श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः।
स याति नरतां यावन्मन्वन्तरं वसुन्धरे ॥

'हे पृथ्वी ! जो मनुष्य नित्य श्रीगीता के एक अध्याय, एक श्लोक अथवा श्लोक के एक चरण का पाठ करता है वह मन्वंतर तक मनुष्यता को प्राप्त करता है।'

गीताया श्लोकदशकं सप्त पंच चतुष्टयम्।
द्वौ त्रीनेकं तदर्धं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः ॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
गीतापाठसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ॥

'जो मनुष्य गीता के दस, सात, पाँच, चार, तीन, दो, एक या आधे श्लोक का पाठ करता है, वह अवश्य दस हजार वर्ष तक चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। गीता के पाठ में लगे हुए मनुष्य की अगर मृत्यु हो जाती है तो वह (पशु आदि की अधम

योनियों में न जाकर) पुनः मनुष्य-जन्म पाता है।'

गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम्।
गीतेत्युच्चारसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ॥

'(और वहाँ) गीता का पुनः अभ्यास करके वह उत्तम गति को पाता है। 'गीता' - ऐसे उच्चार के साथ जो मरता है वह सद्गति को पाता है।' **(श्रीगीता-माहात्म्य: ७,१४-१७)**

पितृनुद्दिश्य यः श्राद्धे गीतापाठं करोति वै।
संतुष्टा पितरस्तस्य निरयाद्यान्ति सद्गतिम् ॥

'जो मनुष्य श्राद्ध में पितरों को लक्ष्य करके गीता का पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होते हैं और नरक से सद्गति पाते हैं।' **(श्रीगीता माहात्म्य-अनुसंधान: ३४)**

अमृतमयी है रसरूपा...

केशव पार्थ का परिसंवाद, महाभारत में गूँजा शंखनाद ।
कर्मयोग नहीं हर्ष विषाद, कल्याणकारिणी भगवद्गीता ॥
परमेश्वरी मनभावनी, आत्म अमीरस दायिनी ।
ब्रह्मस्वरूपिणी फलदायिनी, परमानंद सुखरूप है गीता ॥
अनंत उज्ज्वला ज्ञानमयी, भाव शृंखला पुण्यमयी ।
एकाग्रता मन पर विजयी, आनंदमयी श्री भगवद्गीता ॥
ज्ञान योग से संशय नाश, समता भाव आत्मविश्वास ।
कट जाय काल जाल जम पाश, मोक्षदायिनी है गीता ॥
सर्वतीर्थमयी मंगलकारिणी, भय शोक मोह निवारिणी ।
दुःखहारिणी सुखकारिणी, श्यामप्रिया है भगवद्गीता ॥
असीम शाश्वत फलदायक, भक्तिभावमय सदा सहायक ।
योगक्षेम वहन विधायक, सुखस्वरूपा भगवद्गीता ॥
अक्षर ब्रह्मयोग साधुसंग, शुद्ध हृदय हो जगे उमंग ।
लगे रामनाम रस रंग, शांतिदायिनी जीवन संगीता ॥
वैभव सुख सद्गति पाये, अमर फल आत्मधन पाये ।
स्नेह सदा आनंद छलकाये, आह्लाददायिनी भगवद्गीता ॥
विभूतियोग है ज्ञान आधार, चैतन्यब्रह्म सत्य है सार ।
विश्वरूपदर्शन अपार, भक्तिदायिनी भगवद्गीता ॥
रहे न पाप-ताप-संताप, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ मन निष्पाप ।
त्रिगुणातीत है अपना आपा, योगयोगेश्वरी श्री गीता ॥
दुर्लभ गति पावन मति पाये, आत्मरति निवृत्ति सुख पाये ।
पूर्ण तृप्ति दिलदीप जगाये, ज्ञानरस छलकाये गीता ॥
सर्वशास्त्र ज्ञानधर्ममय, श्रद्धा प्रेम भक्ति आनंदमय ।
परम तत्त्व स्वर सोऽहं की लय, पुण्यदायिनी ईश्वरीय गीता ॥
यम नियम भजन हरिकीर्तन, सेवा सात्त्विक ध्यानमय चिंतन।
निष्काम कर्म से महके जीवन, भवनिधितारिणी भगवद्गीता॥
विषाद सांख्य कर्मयोग, संन्यास आत्मसंयम योग ।
ज्ञानविज्ञान विभूतियोग, भय शोक निवारिणी श्री गीता ॥
संध्या वेदत्रयी मुक्तिदायिनी, गंगा गायत्री सरस्वती गीता ॥
गीता माहात्म्य है अति भारी, शंका भेद भय विपदा हारी।
श्रद्धा दैवी संपदा न्यारी, मातृस्वरूपिणी श्री भगवद्गीता ॥

- जानकी चंदनानी, अमदावाद।

(गुरु तेग बहादुरजी की वाणी)

हरिनाम बिना दुखु पावै...

हरि के नाम बिना दुखु पावै ।
भगति बिना सहसा नह चूकै गुर इह भेदु बतावै ॥
कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए राम सरनि नही आवै ।
जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै ॥
मान मोह दोनौ कउ परहरि गोबिंद के गुन गावै ।
कहु नानक इह बिधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै ॥

'हरिनाम-जप के बिना जीव दुःख प्राप्त करता है। हरिभक्ति के बिना उसके संशय दूर नहीं होते - गुरु ने यह रहस्य बताया है। यदि राम की शरण नहीं ली तो तीर्थ-स्नान, व्रत-उपवास से क्या लाभ ? जो प्रभु के यश को भुला देता है, ऐसा मानों कि उसके योगसाधन, यज्ञ आदि सब कर्म निष्फल हैं। नानकजी कहते हैं कि जो जीव अभिमान और मोह दोनों का परित्याग कर गोविन्द के गुण गाता है, वह इस विधि से जीवन्मुक्ति पाता है।'

जा मै भजनु राम को नांही ।
तिह नर जनमु अकारथ खोइआ यह राखहु मन माही ॥
तीरथ करै ब्रत फुनि राखै नह मनूआ बसि जा को ।
निहफल धरम ताहि तुम मानो साचु कहत मै या कउ ॥
जैसे पाहनि जल महि राखिओ भेदै नाहि तिहि पानी ।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगति हीन जो प्रानी ॥
कल मै मुकति नाम ते पावत गुर यह भेदु बतावै ।
कहु नानक सोई नरु गरूआ जो प्रभ के गुन गावै ॥

'जो लोग राम-भजन नहीं करते, उन्होंने अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही खो दिया है, यह बात मन में सदा याद रखो। जो लोग तीर्थ-स्नान करते हैं, व्रत-उपवास रखते हैं फिर भी यदि उनका मन अपने वश में नहीं है तो उनके संपूर्ण धर्म-कर्म निष्फल मानों - यह मेरा अनुभूत सत्य है। जैसे जल में रखे गये पत्थर को जल नहीं भेदता अर्थात् पत्थर की भीतरी परत को गीला नहीं कर पाता, वैसे ही तुम भक्तिहीन लोगों को समझो। ऐसा प्राणी धर्म-कर्म तो करता है पर पत्थर की ही तरह भक्ति उसके भीतर प्रभाव नहीं डालती। गुरु ने यह भेद स्पष्ट बता दिया है कि कलियुग में प्रभु-नाम स्मरण से ही मुक्ति प्राप्त होती है। इसलिए बाबा नानकजी कहते हैं कि वही प्राणी गौरववाला है (वास्तविक महानता को अर्जित करता है) जो प्रभु के गुण गाता है।' **(श्रीगुरुग्रंथ साहिब)**

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

हम ऐहिक कार्य करते हुए परब्रह्म परमात्मा का चिंतन करें तो हम भी परमात्ममय हो जायेंगे क्योंकि अपना वास्तविक स्वरूप तो अलग नहीं रह सकता।

परमात्ममय कैसे बनें ?

चित्त की दो अवस्थाएँ होती हैं : एक स्थूल और दूसरी सूक्ष्म ।

चित्त की दो अवस्थाएँ होती हैं : एक स्थूल और दूसरी सूक्ष्म । स्थूल अवस्था दुःखदायी होती है जबकि सूक्ष्म अवस्था परम सुखस्वरूप ईश्वर से मिला देती है। जैसे पानी की दो अवस्थाएँ होती हैं : एक बर्फ और दूसरी वाष्प । बर्फ घनीभूत होती है, वाष्प सूक्ष्म । पानी की एक बूँद भी वाष्पीभूत होती है तो उसमें तेरह सौ गुनी ताकत आ जाती है। ऐसे ही चित्त की वृत्ति स्थूल होती है तो कदम-कदम पर दुःख आते हैं। दुःख के प्रसंग न होते हुए भी हम मनोराज से, भय से, आकांक्षाओं से दुःख पैदा कर लेते हैं किंतु जब चित्त की दशा सूक्ष्म होने लगती है तो **'अनअलहक'**, **'सोऽहं'** के भाव मन में आने लगते हैं। तब दुःख के प्रसंग भी हमें दुःखी नहीं कर सकते। यहाँ तक कि काल भी आ जाय तो उसके सिर पर पैर रखने की ताकत आ जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम अपने स्थूल चित्त को सूक्ष्म कैसे बनायें ? अनुभवी महापुरुषों का कहना है कि पहले आत्मा-परमात्मा के विषय में तत्त्वज्ञान सुनना चाहिए। जितनी देर सुनते हैं उससे दस गुना समय मनन में लगाना चाहिए, इससे श्रवण की तुलना में सौ गुना लाभ होता है। मनन से दस गुना समय निदिध्यासन में लगाने से श्रवण किया हुआ सत्संग हजार गुना फलदायी होता है। इस तरह श्रवण, मनन और निदिध्यासन से चित्त धीरे-धीरे सूक्ष्म होने लगता है तथा वह सूक्ष्म चित्त समय पाकर विज्ञान (साक्षात् अपरोक्ष अनुभव) में परिणत हो जाता है। जैसे नक्शा देखकर कोई व्यक्ति इच्छित स्थान पर पहुँच जाता है, ऐसे ही व्यक्ति आत्मज्ञान का सत्संग सुनकर उसका मनन और निदिध्यासन करते-करते आत्मस्वरूप में लीन हो सकता है।

इस तरह हम शास्त्रों की सीढ़ियों के सहारे चित्त को सूक्ष्म करते हुए ज्ञानावस्था को प्राप्त कर सब दुःखों के मूल का नाश कर सकते हैं। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा गया कि मात्र एक निमेष तक ब्रह्मविचार करें तो कोटि मंत्रजाप से भी अधिक पुण्य-उपार्जन होता है और कोटि यज्ञों का फल मिलता है। इसलिए अपने स्वरूप का चिंतन ही सर्वश्रेष्ठ व कल्याणकारी है।

आत्मचिंतन (ब्रह्मविचार) करने का उपाय भी सरल है। मनुष्य जिस समय जिस व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति का चिंतन करता है, उस समय वह अन्य कार्य करते हुए भी चिंतन किये जानेवाले व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति में ही होता है। जैसे, हम मंदिर में हैं और मन दुकान के विचारों में है तो मंदिर में होते हुए भी हम वहाँ नहीं हैं वरन् दुकान में हैं। घर में बैठे हैं तथा चित्त में मंदिर का चिंतन चल रहा है तो हम घर में नहीं, मंदिर में हैं। ऐसे ही हम ऐहिक कार्य करते हुए परब्रह्म परमात्मा का चिंतन करें तो हम भी परमात्ममय हो जायेंगे क्योंकि अपना वास्तविक स्वरूप तो अलग नहीं रह सकता।

आत्मचिंतन करने की योग्यता ईश्वर से मिली हुई एक अनुपम भेंट है। हमें ईश्वर की इस भेंट का, इस योग्यता का सदुपयोग करते हुए, इस मरणधर्मा शरीर में रहते हुए भी जब किसी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष से अमर आत्मा की, सत्संग की बातें सुनने को मिल जायें तो ऐसे तत्त्वज्ञान की बात सुनकर उसमें लग जाना चाहिए। ऐसा करने से हम लौकिक कार्यों को करते हुए भी उसीका चिंतन-मनन करके अपने स्थूल चित्त को सूक्ष्म बना सकते हैं तथा धीरे-धीरे स्व-स्वरूप परमात्मा में स्थित होकर जहाँ राग-द्वेष, ईर्ष्या-भय, जन्म-मरण से मुक्ति है वह पा सकते हैं।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

...और दिखना बंद हो गया
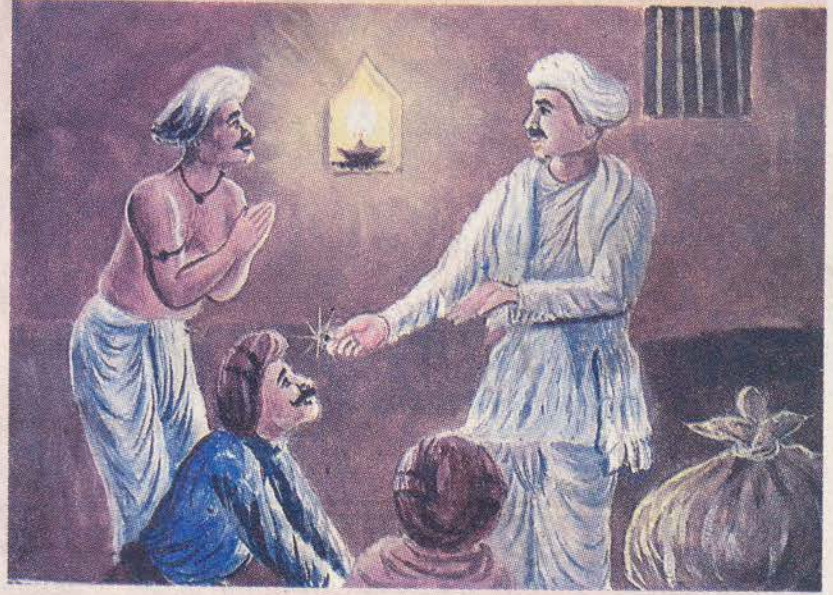
संत एकनाथजी महाराज कथा कर रहे थे। लोग बड़ी तल्लीनता से कथा सुन रहे थे। उन लोगों के बीच तीन चोर भी यह सोचकर बैठ गये कि 'कथा पूर्ण होगी, लोग अपने-अपने घर चले जायेंगे। फिर महाराज की पत्नी, पुत्र और वे स्वयं जब सो जायेंगे, तब उनके घर से माल मारकर अपना काम बना लेंगे।'

कथा सुनकर लोग तो चले गये और चोर पासवाले कमरे में छुपकर बैठ गये। रात गहरा गयी। चोरों ने अपना काम शुरू कर दिया। एकनाथजी थोड़ी देर शयन करके अपने ध्यानखंड में गये व दीप जलाकर ध्यान में बैठ गये।

घर के कमरों से चोरों को जो कुछ लेना था ले लिया। फिर सोचा कि ध्यानखंड में केवल महाराज ही तो हैं, यहाँ भी कुछ हो तो ले लें। जैसे ही चोरों ने दीये की लौ में एकनाथजी को देखा, चोरों को एक झटका लगा और उनकी आँखों की रोशनी चली गयी।

अब तो वे धक्के खाने लगे। आवाज हुई, एकनाथजी ने पूछा : ''कौन हो ? ...कौन हो ?...''

''महाराज ! हम कौन हैं, क्या बतायें ? आपके घर में हाथ मारकर हमने गठरी भरी है। अब हम देख ही नहीं पा रहे हैं।'' इतना कहकर चोर फूट-फूटकर रोने लगे।

एकनाथजी की उदारता, समता गजब की थी ! वे बोले : ''भाइयो ! इसमें क्या है ? हे विट्ठल ! चोरी करना तो इनका धंधा है। अब इनसे क्यों रूठते हो ? इन पर कृपा करो।''

ऐसा कहकर एकनाथजी ने उनकी आँखों पर हाथ घुमाया तो आँखों की रोशनी पुनः आ गयी, चोर देखने लगे।

''भाइयो ! आपको रातभर भूख ने सताया होगा।'' ऐसा कहकर एकनाथजी अपनी पत्नी गिरिजा को जगाते हुए बोले : ''जल्दी भोजन बना दो। बेचारे मेहमान भूखे हैं।''

एकनाथजी ने मेहमानों को भोजन कराया और कहा : ''देखो, मेरे हाथ में अँगूठी है, यह भी ले जाओ। आपका धंधा है चोरी करना, आप अपना धर्म निभाओ। मेरा धर्म है उदारता से लुटाना। मैं मेरा धर्म निभा रहा हूँ। यह गठरी आप उठा नहीं सकोगे। चलो, मैं भी आता हूँ।''

''महाराज ! हमारा धर्म तो घोर नरक में ले जानेवाला है। हम अपना धंधा छोड़ रहे हैं।''

एकनाथजी की उदारता, साधुताई देखकर चोर उनके चरणों में गिर पड़े एवं फूट-फूटकर रोने लगे। सामान की गठरी में से एक तिनका भी नहीं ले गये, फिर भी बहुत कुछ ले गये। क्या ले गये ? एकनाथजी की साधुताई, उनकी सज्जनता, उनके मीठे वचन और भक्ति के खजाने की कुंजी ले गये। भगवान का भजन करके वे भी सद्गति को प्राप्त हो गये।

कैसी निराली महिमा है संतों की ! संसार-ताप से तप्त जीवों पर वे कैसी-कैसी करुणा करते हैं ! दृष्टिमात्र से ही सामनेवाले का जीवन बदल देते हैं। ठीक ही कहा है किसीने :

नजरों से वे निहाल हो जाते हैं,
जो संतों की नजरों में आ जाते हैं।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

माँ के संस्कार

विनोबा भावे की माँ रुक्मिणी भावे भगवान के आगे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती : 'हे अनंत ब्रह्मांडनायक प्रभु ! तू मेरे दोषों का शमन कर दे। मेरे प्यारे ! तू मुझे अपनी प्रीति दे दे।'

इस प्रकार की पुकार करते-करते रुक्मिणी का हृदय भीग जाता था, आँखें भी भीग जाती थीं। इससे माँ तो उन्नत हुई लेकिन नन्हा सपूत विनोबा माँ को देखते-देखते इतने बड़े संत बन गये कि गाँधीजी से भी दो कदम आगे की यात्रा विनोबा भावे की हुई।

एक बार पत्रकारों ने विनोबाजी से पूछा : ''आपको ईश्वर मिले हैं ?''

''नहीं।''

''आप ईश्वर को चाहते हैं ?''

''नहीं।''

''आप ईश्वर को मानते हैं ?''

''नहीं। मानना तो दूसरे को पड़ता है। चाहना दूसरे को होता है। ईश्वर तो मेरा आत्मा है। मैं ही ब्रह्म हूँ।''

''ऐसा तो गाँधीजी भी नहीं बोलते ! वे तो आपके गुरु थे।''

''गाँधीजी मेरे गुरु थे। ठीक है, वे ऐसा नहीं बोलते थे परंतु बाप के कंधे पर बेटा बैठता है तो बाप से भी ज्यादा दूर का देख सकता है।''

जो ब्रह्मनिष्ठा गाँधीजी की नहीं हो सकी, वह माँ के द्वारा किये गये संस्कार-सिंचन से विनोबाजी ने कर दिखायी।

माँ का ऋण कैसा ?

स्वामी विवेकानंद को किसी युवक ने कहा : ''महाराज ! कहते हैं कि माँ का ऋण चुकाना कठिन होता है। ऐसा तो क्या है माँ का ऋण ?''

विवेकानंद : ''इस प्रश्न का उत्तर प्रायोगिक चाहते हो ?''

''हाँ, महाराज !''

''थोड़ी हिम्मत करो, यह जो पत्थर पड़ा है इसको अपने पेट पर बाँध दो और अपने ऑफिस में काम करने जाओ। शाम को मिलना।''

पेट पर ढाई-तीन किलो का पत्थर बँधा हो और कामकाज करें तो क्या हालत होगी ? आजमाना हो तो आजमा के देख लेना। नहीं तो मान लो, क्या हालत होती है।

वह थका-माँदा शाम को लौटा। विवेकानंदजी के पास जाकर बोला : ''माँ का ऋण कैसा - इसका जवाब पाने में तो बहुत मुसीबत उठानी पड़ी। अब बताने की कृपा करें कि माँ का ऋण कैसा होता है ?''

''यह पत्थर तूने कबसे बाँधा है ?''

''आज सुबह से।''

''एक ही दिन तो हुआ, ज्यादा तो नहीं हुआ न ?''

''नहीं।''

''तू एक दिन में ही तौबा पुकार गया। जो महीनों-महीनों तेरा बोझ लेकर घूमती थी, उसने कितना सहा होगा ? उसने तो कभी ना नहीं कहा। अब इससे ज्यादा प्रायोगिक क्या बताऊँ तुझे ?''

योग, बोध और प्रेम क्रियासाध्य नहीं

ध्यान रहे कि योग, बोध और प्रेम क्रियासाध्य नहीं हैं। किसी क्रिया के फलरूप में इनकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि क्रिया का जन्म कर्ता-भाव से होता है। कर्ता-भाव शरीर में 'मैं' भाव होने पर ही होता है और शरीर में 'मैं' भाव अविचार के कारण होता है। जहाँ अविचार है अर्थात् विवेक का आदर नहीं है, वहाँ योग, बोध, प्रेम कैसे हो सकते हैं ?

यह निश्चित नियम है कि प्राप्त विवेक का आदर करने पर यानी उसका सदुपयोग करने पर जब इन्द्रियजनित ज्ञान पर बुद्धि की विजय हो जाती है, तब अंतःकरण सर्वथा शुद्ध हो जाता है। उस समय शरीर में अहंता-ममता न रहने के कारण कर्तापन और भोक्तापन भी नहीं रहता। जब सब प्रकार के राग और वासनाओं का समूल नाश हो जाता है, तब वृत्तिनिरोधरूप योग अपने-आप सिद्ध हो जाता है। उसके होने पर विकल्परहित बोध अपने-आप प्रकट होता है, यह नियम है। ऐसी परिस्थिति में भगवत्प्रेम की लालसा जाग्रत होती है और हृदय में प्रेम की गंगा लहराने लगती है। जिसका कभी अंत नहीं होता अर्थात् नित्य नया प्रेम बना रहता है।

साधक का पुरुषार्थ यहीं तक है कि वह अपने अंतःकरण की सब प्रकार की भोग-वासनाओं का अंत करके उसे शुद्ध कर ले। इसके पश्चात् उसके लिए कोई प्रयत्न, कर्तव्य शेष नहीं रहता।

अपने प्रेमास्पद का स्मरण या चिंतन कर्म नहीं है, वह अपने-आप होता है। उसमें कर्तापन का अस्तित्व नहीं रहता।

नाम-जप और स्मरण में यही अंतर है कि जप तो प्रेम की उपलब्धि के लिए कर्ता-भावपूर्वक किया जाता है। उसमें क्रिया की अधिकता और भाव की न्यूनता रहती है पर स्मरण-चिंतन तो प्रेमास्पद के विरह में अपने-आप होता है।

जो ध्यान या चिंतन भगवान के गुण, नाम, लीला आदि का महत्त्व सुनकर किसी प्रकार के रूप, आकृति या भाव के धारणापूर्वक कर्तापन के सहित किया जाता है, वह अंतःकरण की शुद्धि का हेतु और भगवान में प्रेम-विश्वास उत्पन्न करनेवाला है, इसलिए वह भक्ति का ही एक अंग है। लेकिन उसके साथ जब तक कर्तापन का संबंध है, तब तक उसमें व्यवधान अनिवार्य है। वह सर्वथा निरंतर नहीं हो सकता।

जो स्मरण-चिंतन प्रेमास्पद के वियोग में, उनकी विरह-व्याकुलता में होता है, उसमें व्यवधान नहीं होता क्योंकि उसमें कर्तापन और भोक्तापन का अस्तित्व नहीं रहता, एकमात्र प्रेम-ही-प्रेम रह जाता है। उस समय साधक का शरीर से संबंध नहीं रहता, इसलिए वह क्रियासाध्य नहीं है।

जो कुछ कर्तापन के भाव से किया जाता है, उसका फल तत्काल नहीं मिलता, कालांतर में मिलता है। भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रेम वर्तमान में मिलता है। इसमें कालांतर की अपेक्षा नहीं है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वह प्रयत्नसाध्य नहीं है।

जब साधक अपने-आपको सर्वथा भगवान को समर्पण करके उन्हीं पर निर्भर हो जाता है, तब उसका कर्तापन सर्वथा गल जाता है, करने की वासना का अंत हो जाता है। उसकी अभिलाषा भगवान की अकारण कृपा से अपने-आप पूर्ण होती है। हृदय प्रेम से छका रहता है। करने के द्वारा जो कुछ मिला है, उसके राग की निवृत्ति हो जाती है और जो वर्तमान में, सर्वदा, सर्वत्र विद्यमान है, उस पर विश्वास से चित्त शुद्ध हो जाता है।

जो सचमुच नित्य वर्तमान है वह (परमेश्वर) अपने को और जो सदा-सर्वदा नहीं है उसको भी प्रकाशित करता है। [सदा वर्तमान है द्रष्टा सच्चिदानंद स्वरूप और जो दृश्य परिवर्तित हो रहा है उसको भी वह प्रकाशित कर रहा है।] पर 'है' (परमात्मा) की प्रीति - जो वास्तव में नहीं है उसकी निवृत्ति में और जो है उस (परमात्मा) की प्राप्ति में समर्थ है। इसलिए भगवत्प्रीति का महत्त्व भगवान से भी अधिक है। अतएव भगवद्विश्वासी साधकों को भगवत्प्रीति और विश्वास को सर्वदा सुरक्षित रखना चाहिए।

भीम को पकड़ा अजगर ने

सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

पांडवों के वनवास का ११वाँ वर्ष पूरा होने को था। भीमसेन एक दिन 'विशाखयूप वन' में पर्वत की कंदरा में भूख से पीड़ित एक अजगर के पास जा पहुँचे। एकाएक अजगर ने भीम को बुरी तरह से पकड़ लिया। भीम ने छूटने की बहुत कोशिश की किंतु अजगर की लपेट से न छूट सके। उनके प्राण संकट में आ गये। भीम ने युधिष्ठिर महाराज का मन-ही-मन स्मरण किया।

इधर युधिष्ठिर ने कहा : ''भाई भीम अभी तक आया नहीं है। जरा देखें।''

युधिष्ठिर भीम की खोज में निकल पड़े। खोजते-खोजते देखा कि भीम एक बलवान अजगर की लपेट में है। युधिष्ठिर ने अजगर से कहा : ''मैं युधिष्ठिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, अजगरराज! आपको मेरे भाई के बदले में जो कुछ भी चाहिए मैं यथासंभव आपको दूँगा। आप मेरे इस पराक्रमी भाई को छोड़ दें।''

अजगर : ''दिन के छठे भाग में मुझे जो भी मिल जाय, वह मेरे लिए ग्राह्य भोजन का विधान है। मैं अपना न्याययुक्त शिकार कैसे छोड़ सकता हूँ ? यह संभव ही नहीं है।''

''सर्पराज! आप न्याययुक्त बात कर रहे हैं। अगर मैं सुनने योग्य होऊँ तो कृपया अपनी आवश्यकता बताइये। मैं किस उपाय का अवलंबन लूँ जिससे आप भीम को छोड़ सकते हैं ?''

''निष्पाप नरेश ! मेरे प्रश्नों के उत्तर मिल जायें तो मेरी इस नीच योनि से सद्गति हो जायेगी। फिर मैं तुम्हारे भाई को भी छोड़ दूँगा तथा इस शरीर को छोड़ देवलोक में जाऊँगा।''

''भुजंगम् ! आप प्रश्न करिये। मैं आपको प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगा।''

''ब्राह्मण कौन है ?''

''जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, तपस्या और दया हो, वह ब्राह्मण है।''

''सत्य, दान आदि गुण तो छोटी जातिवालों में भी होते हैं।''

''जिसमें ये सद्गुण पाये जाते हैं उसे ब्राह्मण कहा जायेगा और अगर ब्राह्मण में ये सद्गुण नहीं हैं तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जायेगा।''

''जानने योग्य क्या है ?''

वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत्।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम्॥

''सर्प ! जानने योग्य तत्त्व तो परब्रह्म ही है, जो दुःख-सुख से परे है तथा जहाँ पहुँचकर अथवा जिसे जानकर मनुष्य शोक के पार हो जाता है। बताओ, तुम्हें अब इस विषय में क्या कहना है ?'' **(महाभारत, वनपर्व, अजगरपर्व : १८०.२२)**

जानने योग्य अपना-आपा है। जानने योग्य सृष्टि का आधार है। जानने योग्य सुख-दुःख का आधार है। जानने योग्य वही परमेश्वर है। इंद्रियाँ संसार को जानती हैं, उसे नहीं जानतीं परंतु वह सबको जानता है। उसको जो जानता है वह स्वयं वही रूप हो जाता है।

युधिष्ठिर का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर अजगरराज को आत्मसंतोष हुआ। उसने कहा :

''युधिष्ठिर ! तुम जानने योग्य सभी बातें जानते हो। अब मैं तुम्हारे भाई भीमसेन को कैसे खा सकता हूँ ?''

युधिष्ठिर ने पूछा : ''आप संपूर्ण वेद-वेदांगों के ज्ञाता हैं। नागराज ! बताइये, दान बड़ा है कि सत्य ? अहिंसा बड़ी है कि प्रिय भाषण ? इनमें से किसका महत्त्व अधिक है और किसका कम ?''

''महाराज ! दान, सत्य, अहिंसा और प्रिय भाषण - इनकी गुरुता तथा लघुता कार्य की महत्ता के अनुसार देखी जाती है।''

किसीके प्राणों की रक्षा होती है और उसके अनुरूप वचन बोलते हैं तो वह वचन बड़ा है। सत्पात्र है और उचित जगह पर है तो दान बड़ा है। निर्दोष है तो वहाँ अहिंसा बड़ी है। कोई थका-माँदा है तो वहाँ प्रिय भाषण बड़ा है। ये सब अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने-अपने स्थान पर बड़े हैं।

युधिष्ठिर ने कहा : ''आप इतने दिव्य प्रश्न करते हैं, कृपा करके बताइये कि आप कौन हैं ? इस नीच योनि में कैसे

आये ?''

''मैं पूर्वजन्म में तुम्हारा पूर्वज नहुष नाम का राजा था। चंद्रमा से पाँचवीं पीढ़ी के राजा आयु का पुत्र नहुष हूँ मैं। ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त होकर मैंने बहुत-से ब्राह्मणों का अपमान किया। स्वर्ग में मुनिवर अगस्त्य जब मेरी पालकी ढो रहे थे, तब मैंने उन्हें लात मारी। इससे उन्होंने मुझे शाप दिया : 'तू निश्चय ही सर्प हो जा।'

फिर मैंने क्षमा-याचना की तब दया से द्रवित होकर महर्षि अगस्त्य ने कहा : 'राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें इस शाप से मुक्त करेंगे।'

आज आपके शुभागमन से मुझे शाप से छूटने का अवसर मिला, मेरा बहुत बड़ा कार्य सिद्ध हो गया। मैं अपने पाप के कारण अजगर-योनि में भटक रहा था। सत्संग के सत्वचनों से मेरी बुद्धि के दोष गये। अब मैं स्वर्ग को जा रहा हूँ।''

उसी मुहूर्त में इच्छानुसार चलनेवाला विमान वहाँ आ पहुँचा। राजा नहुष ने अजगर का शरीर त्याग दिया व दिव्य शरीर धारण करके पुनः स्वर्गलोक चले गये।

'गहना कर्मणो गतिः' कहाँ तो राजा नहुष और वे अजगर हो गये किंतु सत्संग ने कैसी सद्गति कर दी।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥

कुछ घड़ी के सत्संग से राजा नहुष अजगर-योनि त्यागकर पुनः स्वर्ग को प्राप्त हो गये। बड़ी दिव्य है सत्संग की महिमा !

(महाभारत,वन.,अज.पर्व)

पृष्ठ क्र. १५ का शेष

जो दुःख, चिंता और भय में भी हमें सुरक्षित रखती है।

प्रारंभिक विश्वास से श्रद्धा पैदा होती है। श्रद्धा की दृढ़ता से दृढ़ विश्वास पैदा होता है और दृढ़ विश्वास तथा श्रद्धा जब एक हो जाते हैं तो मनोवांछित फल प्रकट होता है।

श्रद्धा और विश्वास का संयोग होने से अलौकिक प्रसन्नता, अलौकिक संकल्प-बल पैदा होता है। शोकरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, असंभवरूपी विकल्प नष्ट हो जाता है एवं सारे अभावों का अभाव हो जाता है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धा हृदय्यश्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसुः ॥
(ऋग्वेद : १०.१५१.४)

'ऋग्वेद' कहता है : श्रद्धा हृदय की ऊँची भावना का प्रतीक है। इससे मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन सफल होता है और वह परम धन प्राप्त करके सुखी हो जाता है। ऐसा व्यक्ति निर्धन होते हुए भी धनवानों को दान दे सकता है, सत्तारहित होते हुए भी कइयों को सत्ता का दान कर सकता है। उस परम तत्त्व की श्रद्धा का फल अद्भुत है !

श्रद्धा बिना धर्म नहीं होई... श्रद्धा के बिना धर्म नहीं होता और विश्वास के बिना सिद्धि नहीं मिलती। श्रद्धा से पत्थर की मूर्ति पर भी जल चढ़ाते हो तो धर्म हो जाता है। शास्त्रों में वर्णित है कि भक्तों के आगे भगवान प्रकट हो जाते हैं। क्या वैकुंठाधिपति वैकुंठ से आते हैं या बंसी बजाते हुए श्रीकृष्ण गोलोक-द्वारिका से आते हैं ? कोई बंसीधर श्रीकृष्ण को चाहते हैं तो कोई अर्जुन को उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण को चाहते हैं और कोई बाल गोपाल श्रीकृष्ण को चाहते हैं। वास्तव में वैकुंठाधिपति या श्रीकृष्ण कहाँ और किस रूप में बैठे हैं ? मानना पड़ेगा कि श्रद्धावान की श्रद्धा उस अंतर्यामी सत्ता से उसकी श्रद्धा के अनुरूप भगवान को प्रकट कर देती है।

श्रद्धा और विश्वास विशुद्ध प्रकाश हैं, विशुद्ध बल हैं, विशुद्ध संबल हैं। ये हारे हुए की हिम्मत हैं, निराशों की आशा हैं; बल भी हैं, संबल भी हैं। श्रद्धा-विश्वासवाला पत्थर से प्रभु को प्रकट कर सकता है। श्रद्धा-विश्वासवाला माता व पिता में प्रभु को निहार सकता है। श्रद्धा-विश्वासवाला गुरु के हृदय से परमात्मा को छलका सकता है और जब उनके दिलों से छलका सकता है तो अपने दिल में भी परमात्मा को जानने में सफल हो जायेगा।

पथ्य-अपथ्य विवेक

आहार द्रव्यों के प्रयोग का व्यापक सिद्धांत :

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥

'ऐसे आहार द्रव्यों का नित्य सेवन करें जिससे स्वास्थ्य का अनुरक्षण (Maintenance) होता रहे और जो रोग उत्पन्न नहीं हुए हैं उनकी उत्पत्ति भी न हो।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थान, मात्राशितीयाध्याय : १३)

जो पदार्थ शरीरस्थ रस-रक्तादि सप्तधातुओं के समान गुणधर्मवाले हैं उनके सेवन से स्वास्थ्य की रक्षा होती है । अष्टांगसंग्रहकार वाग्भटाचार्यजी ने ऐसे नित्य सेवनीय पदार्थों का वर्णन किया है।

साठी के चावल, मूँग, गेहूँ, जौ, गोघृत, गोदुग्ध, शहद, अंगूर, अनार, परवल, जीवन्ती (डोडी), आँवला, हर्रे, मिश्री, सैंधव व आकाश का जल स्वभावतः धातुवर्धक होने के कारण सदा पथ्यकर हैं।

इसके विपरीत जो पदार्थ धातुओं के विरुद्ध गुणधर्मवाले व त्रिदोषों को प्रकुपित करनेवाले हैं, उनके सेवन से रोगों की उत्पत्ति होती है । इन पदार्थों में कुछ परस्पर गुणविरुद्ध, कुछ संयोगविरुद्ध, कुछ संस्कारविरुद्ध और कुछ देश, काल, मात्रा, स्वभाव आदि से विरुद्ध होते हैं।

जैसे, दूध के साथ मूँग, उड़द, चना आदि दालें; सभी प्रकार के खट्टे व मीठे फल; गाजर, शकरकंद, आलू, मूली जैसे कंदमूल; तेल, गुड़, शहद, दही, नारियल, लहसुन, कमलनाल, सभी नमकयुक्त व अम्लीय पदार्थ संयोगविरुद्ध हैं। दही के साथ उड़द, गुड़, काली मिर्च, केला व शहद; शहद के साथ गुड़; घी के साथ तेल विरुद्ध है।

शहद, घी, तेल व पानी इन चार द्रव्यों में से दो अथवा तीन द्रव्यों का समभाग मिश्रण मात्राविरुद्ध है । गर्म व ठंडे पदार्थों का एक साथ सेवन वीर्यविरुद्ध है। दही व शहद को गर्म करना संस्कारविरुद्ध है।

दूध को विकृत कर बनाया गया छेना, पनीर आदि व खमीरीकृत पदार्थ स्वभाव से विरुद्ध हैं।

हेमंत व शिशिर इन शीत ऋतुओं में अल्पभोजन, शीत, लघु, रुक्ष, वातवर्धक पदार्थों का सेवन तथा वसंत-ग्रीष्म-शरद इन उष्ण ऋतुओं में दही का सेवन कालविरुद्ध है। मरुभूमि में रुक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थों व समुद्रतटीय प्रदेशों में स्निग्ध-शीत पदार्थों का सेवन, क्षारयुक्त भूमि के जल का सेवन देशविरुद्ध है।

अधिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तियों के लिए अल्प, रुक्ष, वातवर्धक पदार्थों का सेवन व बैठे-बैठे काम करनेवाले व्यक्तियों के लिए स्निग्ध, मधुर, कफवर्धक पदार्थों का सेवन अवस्थाविरुद्ध है। अधकच्चा, अधिक पका हुआ, जला हुआ, बार-बार गर्म किया गया, उच्च तापमान पर पकाया गया (जैसे - फास्टफूड), अति शीत तापमान में रखा गया (जैसे - फ्रिज में रखे पदार्थ) भोजन पाकविरुद्ध है।

वेग लगने पर मल, मूत्र का त्याग किये बिना, भूख के बिना अथवा बहुत अधिक भूख लगने पर भोजन करना क्रमविरुद्ध है।

जो आहार मनोनुकूल न हो वह हृदयविरुद्ध है क्योंकि अग्नि प्रदीप्त होने पर भी आहार मनोनुकूल न हो तो सम्यक् पाचन नहीं होता।

इस प्रकार के विरोधी आहार के सेवन से बल, बुद्धि, वीर्य, आयु का नाश, नपुंसकता, अंधत्व, पागलपन, अर्श, भगंदर, कुष्ठरोग, पेट के विकार, शोथ, अम्लपित्त, सफेद दाग, ज्ञानेन्द्रियों में विकृति व अष्टौमहागद अर्थात् आठ प्रकार की असाध्य व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। विरुद्ध अन्न का सेवन मृत्यु का भी कारण हो सकता है।

अतः पथ्य-अपथ्य का विवेक कर नित्य पथ्यकर पदार्थों का ही सेवन करें । अज्ञानवश विरुद्ध आहार के सेवन से उपरोक्त व्याधियों में से कोई भी उत्पन्न हो गयी हो तो वमन-विरेचनादि पंचकर्म से शरीर की शुद्धि एवं अन्य शास्त्रोक्त उपचार करने चाहिए। ऑपरेशन व अंग्रेजी दवाएँ रोगों को जड़-मूल से नहीं निकालते । अपना संयम और निःस्वार्थ एवं जानकार वैद्य की देखरेख में किया गया पंचकर्म विशेष लाभ देता है। इससे रोग तो मिटते ही हैं, १०-१५ साल आयुष्य भी बढ़ सकता है।

पीपल का मुरब्बा

पीपल के कोमल नये पत्ते उबालकर छान लें। छाने हुए इन पत्तों को चाशनी में डालकर उसका मुरब्बा बनायें। इस मुरब्बे को खाने से रक्तविकार, रक्तपित्त, मंदाग्नि, पीलिया, सूजन, उरःक्षत (फेफड़ों के घाव) एवं सूखी खाँसी मिटती है। यह मुरब्बा बंगभस्म, लौहभस्म या सुवर्णभस्म से भी अधिक शक्ति देता है।

सौभाग्य-शुंठी पाक

इस पाक के लाभादि का वर्णन भगवान महादेव ने माता पार्वती के समक्ष किया था। नारदजी ने इसे ब्रह्माजी के श्रीमुख से सुना था और अश्विनीकुमारों ने इस पाक का निर्माण किया था।

सामग्री : शुंठी (सोंठ) २५० ग्राम, गाय का घी ६०० ग्राम, गाय का दूध १ लीटर, शक्कर २ किलो, किशमिश व चिरौंजी ५०-५० ग्राम, हरे नारियल का खोपरा (गिरी) ४०० ग्राम, छुहारा २० ग्राम।

औषधि द्रव्य : स्याहजीरा (काला जीरा), धनिया, लेंडीपीपर, नागरमोथ, विदारीकंद, शंखावली, ब्राह्मी, शतावरी, वचा, गोखरू, बला के बीज, तमालपत्र, पीपरामूल, अश्वगंधा व सफेद मूसली २०-२० ग्राम, नागकेसर, चंदन, लौहभस्म व शिलाजीत १०-१० ग्राम। **सुगंधित द्रव्य** : सौंफ व इलायची २०-२० ग्राम, जायफल, जावित्री व दालचीनी १०-१० ग्राम, केसर ५ ग्राम।

विधि : लोहे की कड़ाही में घी को गर्म कर उसमें सोंठ को भून लें। सोंठ के सुनहरे लाल हो जाने पर उसमें दूध व शक्कर मिला दें तथा गाढ़ा होने तक हिलाते रहें। बाद में किशमिश, चिरौंजी, खोपरा, छुहारा तथा उपरोक्त औषधि द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर धीमी आँच पर मिश्रण को पकाते हुए सतत हिलाते रहें। जब मिश्रण में से घी छूटने लगे एवं मिश्रण का पिंड (गोला) बनने लगे, तब जायफल, इलायची आदि सुगंधित द्रव्यों का चूर्ण मिलायें और मिश्रण को नीचे उतार लें। सुगंधित द्रव्यों को अंत में मिलाने से उनकी सुगंध बनी रहती है।

सेवन-विधि : सुबह १० ग्राम पाक दूध के साथ लें। उसके चार से छः घंटे बाद भोजन करें। भोजन में तीखे, खट्टे, तले हुए तथा पचने में भारी पदार्थ न लें। शाम को पुनः १० ग्राम पाक दूध के साथ लें।

लाभ : इस पाक के सेवन से बल, कांति, बुद्धि, स्मृति, उत्तम वाणी, सौंदर्य, सुकुमारता तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है। प्रसूति के बाद माताओं को यह पाक देने से योनि-शैथिल्य दूर होता है, दूध खुलकर आता है। इसके सेवन से ८० प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफरोग, ८ प्रकार के ज्वर, १८ प्रकार के मूत्ररोग तथा नासारोग (नासिका के रोग, जिनकी संख्या 'भावप्रकाश' में ३४ बतायी गयी है), नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, मस्तिष्क के रोग, बस्तिशूल व योनिशूल नष्ट हो जाते हैं।

सर्दियों में इस दैवी पाक का विधिवत् सेवन कर सभी नीरोगता और दीर्घायुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। इसका सेवन 'वसंत पंचमी' (२ फरवरी) तक किया जा सकता है।

मात्र एक दिन इसका सेवन करने से पूज्य बापूजी को इसकी गुणवत्ता का अनुभव हुआ और उन्होंने इसे प्रभावशाली घोषित किया।

आप इस पाक को घर में बना सकते हैं। जो लोग घर में नहीं बना सकते वे समिति के द्वारा शुद्ध द्रव्यों और वैद्यों की देख-रेख में बनाये गये इस पाक का लाभ लें।

संत च्यवनप्राश

च्यवनप्राश विशिष्ट आयुर्वेदिक उत्तम औषध तथा पौष्टिक खाद्य है, जिसका प्रमुख घटक आँवला है। जठराग्निवर्धक और बलवर्धक च्यवनप्राश का सेवन अवश्य करना चाहिए।

आँवले को उबाला जाता है तथा ५६ प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त हिमालय से लायी गयी सप्तधातुवर्धनी वनस्पति वज्रबला डालकर यह च्यवनप्राश बनाया जाता है। आश्रम में उन औषधियों व जड़ी-बूटियों की साफ-सफाई बड़ी तेजी-से चल रही है। शरद पूर्णिमा के बाद ही आँवले वीर्यवान होते हैं। शरद पूर्णिमा को लगाये गये पेड़-पौधे अन्य दिनों में लगाये गये पौधों की अपेक्षा अधिक फलते-फूलते हैं।

लाभ : बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, हृदयरोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, त्वचाविकार, छाती की जकड़न, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्ररोग आदि नष्ट हो जाते हैं। यह स्मरणशक्ति, बुद्धि वर्धक तथा कांति, वर्ण, प्रसन्नता देनेवाला है एवं इसके सेवन से बुढ़ापा देरी से आता है। यह फेफड़ों को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमंद है। वीर्यविकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह क्षय (टी. बी.) और हृदयरोगनाशक है। संक्षेप में कहा जाय तो पूरे शरीर की कार्यविधि को सुधार देनेवाला है।

चाँदी, लौह, बंग, अभ्रक व केसर युक्त स्पेशल च्यवनप्राश भी उपलब्ध है।

मात्रा : दूध या नाश्ते के पूर्व १५ से २० ग्राम सुबह-शाम। बच्चों के लिए ५ से १० ग्राम।

च्यवनप्राश की गुणवत्ता की रक्षा के लिए उसे प्लास्टिक के डिब्बे में रखने के बजाय काँच के बर्तन में रखें। इससे वह विशेष स्वास्थ्यप्रद होगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : हे अर्जुन ! मैं तुम्हें मुक्ति-प्रदायक कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की 'प्रबोधिनी एकादशी' के संबंध में नारदजी और ब्रह्माजी के बीच हुए वार्तालाप को सुनाता हूँ। एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा :

हे पिता ! 'प्रबोधिनी एकादशी' के व्रत का क्या फल होता है ? कृपा करके मुझे विस्तारपूर्वक बतायें।

ब्रह्माजी बोले : हे पुत्र ! जिस वस्तु का त्रिलोकी में मिलना दुष्कर है, वह वस्तु भी कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की 'प्रबोधिनी एकादशी' के व्रत से मिल जाती है। इस व्रत के प्रभाव से पूर्वजन्म में किये हुए अनेक बुरे कर्म क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस दिन थोड़ा भी पुण्य करते हैं, उनका वह पुण्य पर्वत के समान अटल हो जाता है। उनके पितर विष्णुलोक में जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि महान पाप भी 'प्रबोधिनी एकादशी' की रात्रि को जागरण करने से नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! मनुष्य को भगवान की प्रसन्नता के लिए कार्तिक मास की इस एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य इस व्रत को करता है, वह धनवान, योगी, तपस्वी तथा इंद्रियों को जीतनेवाला होता है क्योंकि एकादशी भगवान विष्णु को अत्यंत प्रिय है।

इस एकादशी के दिन जो मनुष्य भगवान की प्राप्ति के लि दान, तप, होम, यज्ञ (भगवन्नाम-जप परम यज्ञ है। **यज्ञा जपयज्ञोऽस्मि** । 'यज्ञों में जपयज्ञ मेरा ही स्वरूप है श्रीमद्भगवद्गीता : १०.२५) आदि करते हैं, उन्हें अक्षय पु मिलता है। इसलिए हे नारद ! तुमको भी इस दिन भगवान वि की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

इस एकादशी के दिन मनुष्य को ब्राह्ममुहूर्त में उठकर व्र का संकल्प लेना चाहिए और भगवान विष्णु की पूजा कर चाहिए। रात्रि को भगवान के समीप कथा-कीर्तन, जप, नृ आदि करते हुए जागरण करना चाहिए।

'प्रबोधिनी एकादशी' के दिन पुष्प, अगर, धूप आदि भगवान की पूजा-आराधना करनी चाहिए एवं भगवान को अ देना चाहिए। इसका फल तीर्थ-सेवन और दान आदि से करो गुना अधिक होता है।

जो मनुष्य गुलाब, बकुल (मौलसिरी), अशोक, चंप (चंपा) व सफेद और लाल कनेर के फूलों से, दूर्वादल ए शमीपत्र से भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, वे आवागमन के च से छूट जाते हैं। इस प्रकार रात्रि में भगवान की पूजा कर प्रातःकाल स्नान के पश्चात् भगवान की प्रसन्नता के लिए गु की पूजा करनी चाहिए और सदाचारी व पवित्र ब्राह्मणों व दक्षिणा देकर व्रत छोड़ना चाहिए। जो मनुष्य चातुर्मास्य व्रत किसी वस्तु को त्याग देते हैं, वे इस दिन से उस वस्तु को पु ग्रहण कर सकते हैं।

जो मनुष्य 'प्रबोधिनी एकादशी' के दिन विधिपूर्वक व्र करते हैं, उन्हें अनंत सुख मिलता है और अंत में वे स्वर्गलोक क प्राप्त होते हैं।

कार्तिक मास में त्याज्य पदार्थ : 'स्कंद पुराण' के अनुसार : 'कार्तिक में तेल, शहद, चावल, सभी प्रकार की दालें, लौकी, गाजर, बैंगन, अधिक बीजयुक्त फल (जैसे - अमरूद, सीताफल), लसोड़े का फल, काँसे के पात्र में भोजन, दुबारा भोजन, बासी-पराया-सूतक व श्राद्ध का अन्न - ये सभी त्याग देने योग्य हैं।' कार्तिक में करेला खाना वर्जित है। कार्तिक मास में भजन व ओज-तेज बढ़ाने की इच्छावाले के लिए ये सब त्याग देने योग्य हैं। **इन दिनों छाछ का सेवन लाभदायी है।**

शराब छुड़ाने का उपाय

जिनको शराब की लत लग गयी हो और शराब नहीं छूटती हो, वे अपनी जेब में थोड़ी किशमिश रखा करें। शराब पीने की इच्छा हो तब १० से १२ ग्राम किशमिश के दाने लें और एक-एक दाना मुँह में डालकर चबाते हुए उसका रस चूसते जायें। यदि आप घर में हों तो किशमिश का शरबत बनाकर भी पी सकते हैं। इससे दिमाग को ताकत मिलेगी और धीरे-धीरे शराब छोड़ने की क्षमता आ जायेगी। शराब पीने से जो ज्ञानतंतु कमजोर हो गये हैं, नसें कमजोर हो गयी हैं वे किशमिश के सेवन से बलवान हो जायेंगी और आप उत्साह, शक्ति एवं प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। इस प्रयोग के साथ निम्न मंत्र का जप भी लाभदायक है, जो शराब से विरक्ति दिलाता है : **ॐ ह्रीं यं यश्वरायै नमः।**

अथवा जब शराबी निद्रा में हो तब उसके कुटुंबी इस मंत्र को मन में जपें और उसके श्वासोंश्वास के पास खड़े होकर भावना करें : 'तुम शराब छोड़ दो, तुम शराब छोड़ दो...' इससे भी शराबी की शराब छूटेगी।

तेरी बिगड़ी हुई बात सँभल जायेगी, हर एक आह मधुर गीत में ढल जायेगी ।
हिम्मत से अगर काम ले ओ मुसाफिर ! तेरे ही हाथों से तेरी तकदीर बदल जायेगी ॥

गुरु के अमृतवचनों से, सुख शांति निज आनंद मिला । रही न चिंता चाह कोई, आत्मोन्नति का द्वार खुला ॥

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

निवाई, जि. टोंक (राज.), ३० सितम्बर से २ अक्टूबर : आयुर्वेद के महान आचार्य श्री चरक के अनुसार आरोग्यवर्धक भूमियों में मरुभूमि सर्वश्रेष्ठ है । ऐसी स्वास्थ्यवर्धक भूमि में निवास करनेवाले निवाईवासियों के लिए भगवत्कृपा से मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने का सुअवसर आया परम पूज्य बापूजी के सत्संग-कार्यक्रम के माध्यम से । निवाईवासियों के भाग्य की जितनी सराहना की जाय कम है क्योंकि जहाँ अधिक आबादीवाले आगरा को ढाई दिन और इटावा को दो दिन का सत्संग-कार्यक्रम मिला, वहीं निवाई को कम आबादीवाला शहर होते हुए भी तीन दिन का सत्संग-कार्यक्रम प्राप्त हुआ । कोई इसे निवाई गौशाला में हो रही गोसेवा का पुण्यप्रताप बता रहा था तो कोई पूज्य बापूजी की अहैतुकी कृपा मान रहा था।

सत्संग-कार्यक्रम से पूर्व पूज्यश्री का ६ दिन का एकांतवास निवाईवासियों के लिए एक अविस्मरणीय कालखंड बना । इन दिनों पूज्यश्री का निवास आश्रम की गौशाला में रहा तथा आगंतुकों को प्रतिदिन खूब सत्संग-दर्शन मिलता रहा । 'आदर्श गौशाला' के सम्मान से विभूषित इस गौशाला में हजारों की संख्या में गोधन की सेवा हो रही है। दूध न देनेवाली, कसाईखाने भेजी जा रही या लोगों द्वारा चारे के अभाव में छोड़ दी गयी बेसहारा गायों को यहाँ आश्रय मिला, जीवनदान मिला।

सत्संग-कार्यक्रम के प्रथम दिन ही पूज्य बापूजी ने ध्यान-संकीर्तन में निवाईवासियों को आत्मसुधा की प्यालियाँ पिलायीं। सत्संग में पूज्यश्री ने दर्शनशास्त्र की ऊँची व गूढ़ बातें सरल भाषा में समझायीं : ''जो बीता हुआ है, अभी है नहीं, मुर्दा है उसको याद करके क्यों अपना मन बिगाड़ूँ ? जो भविष्य में है नहीं उसकी चिंता करके क्यों डरूँ ? और वर्तमान देखते-ही-देखते भूतकाल में परिवर्तित हो रहा है । सदा वर्तमान तो मेरा आत्मा है, जिसके आगे वर्तमान गुजरता जा रहा है।

वर्तमान की प्रतीति जिसको होती है वह परमात्मा सदा वर्तमान है । यह बहुत ऊँचा दार्शनिक सिद्धांत है । जो तत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान को पाना चाहते हैं उनके लिए बहुत ऊँची, ध्यान देने योग्य बात है।

सुख-दुःख सपना हो जाता है, बीत जाता है इसलिए सच्चा नहीं है लेकिन इन्हें जाननेवाला ज्ञानस्वरूप मेरा परमात्मा सच्चा है।

सुख से चिपकें दुःख से भागें, जीवन जीने का यह दस्तूर नहीं।
एक विदा होता है तो जानो, दूसरे का आना दूर नहीं ॥

सुख-दुःख के सिर पर पैर रखो और परमात्मा से प्रीति करो, बस। तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू ! इहलोक का सुख भी और मुक्ति भी।''

आगरा (उ.प्र.), २ शाम से ४ अक्टूबर तक : ऐतिहासिक नगरी आगरा में इस बार पूज्य बापूजी के सत्संग-कार्यक्रम ने एक नया इतिहास बनाया। आगरा में अभी तक हुए सभी आयोजनों के रिकार्ड इस कार्यक्रम ने तोड़ दिये। लम्बे समय से पूज्य बापूजी के सत्संग-दर्शन के लिए आकुल-व्याकुल पुण्यात्मा आगरावासियों का तीनों दिन आगरा आश्रम में ताँता लगा रहा। इन दिनों आगरा आश्रम ने संसार-ताप से

बालक हो या वृद्ध आनंद एवं शांति सर्वत्र-सभीकी माँग है। इसकी पूर्ति का एकमात्र साधन है बापूजी का सत्संग, जिसे पाकर धन्यता का अनुभव करता विशाल जनसमुद

आगरा (उ.प्र.)

प्रभुप्रीति भक्तिरस पा रहे,
निज आत्मभाव जगा रहे।
पुण्यशाली हैं ये भक्तगण,
अपना सौभाग्य बना रहे।
गुरुज्ञान आत्मसुख पा रहे,
सत्संग सरिता में नहा रहे।
सुख-सुविधा और प्रतिष्ठा तज,
हरिनाम अमर रस पा रहे।

तप्त जीवों को हार्दिक शीतलता प्रदान करनेवाले विशाल वैकुंठ का रूप धारण कर लिया था।

अत्यधिक प्रदूषित जलवायु आदि की तकलीफें सह रहे आगरावासियों ने पूज्य गुरुदेव के सत्संग-दर्शन पाकर राहत की साँस ली, आंतरिक सुकून पाया व बाह्य परेशानियों के सिर पर पैर रखकर जीवन को समता की मधुर सुवास से महकाने का मार्गदर्शन पाया।

जैसे कोई बच्चा अधिक समय तक अपनी माँ से बिछुड़ जाय और फिर उसे माँ सामने दिखे तो वह कैसे माँ की ओर दौड़ने लगता है, वही स्थिति आगरावासियों की देखी गयी। सेवाधारियों द्वारा बनायी बाड़ तोड़कर लोग बापूजी के नजदीक से दर्शन की कोशिश कर रहे थे। एक साथ माता-पिता, सद्गुरु, सच्चे मित्र, पूर्ण हितैषी, मार्गदर्शक, भगवत्सुख के दाता, जीवन्मुक्ति-प्रदाता, योगमार्ग के समर्थ आचार्य, हताश-निराश मृतवत् जीवन में भी सुख-शांतिमय जीवन जीने का प्राणबल भर देनेवाले आत्मबल के सागर... बापूजी ! कितने-कितने रूपों में भक्त आपको हृदय में बसाते हैं, कहना संभव नहीं है।

पूज्य बापूजी के सत्संग-सान्निध्य का लाभ 'संत श्री आसारामजी पब्लिक स्कूल, आगरा' के विद्यार्थियों ने भी लिया व विद्याप्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने की कुंजियाँ पायीं। इन विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किये गये सांस्कृतिक कार्यक्रम आगरावासियों को मंत्रमुग्ध कर गये।

पूज्यश्री ने आगरावासियों को संबोधित करते हुए कहा : ''मैं आपसे फूल-हार लेने नहीं आया, चीज-वस्तु लेने नहीं आया, रुपया-पैसा लेने नहीं आया। आप 'बापूजी की जय बोलो'- यह सुनने के लिए मैं इतना परिश्रम करके यहाँ नहीं आया। केवल तुम्हारी नासमझी मुझे दे दो व मेरे गुरु का प्रसाद ले लो और सब दुःखों के सिर पर पैर रखकर इसी जन्म में मुक्ति का अनुभव कर लो, इतना ही मैं चाहता हूँ।

जब वो तैयार, मैं तैयार तो तुझे लेने में क्यों इनकार ?''

इटावा (उ.प्र.), ५ व ६ अक्टूबर : पूज्य बापूजी के आत्मसाक्षात्कार दिन का कार्यक्रम अपने यहाँ हो, इसलिए आगरा और दिल्लीवालों ने खूब प्रार्थनाएँ कीं परंतु इटावावासियों के भाग्य में 'आत्मसाक्षात्कार महोत्सव' का कार्यक्रम आया।

इटावावासियों में संत-दर्शन एवं सत्संग पाने हेतु तितिक्षा सहने का सद्गुण विशेष देखने को मिला। खटखटा बाबा जैसे पूर्वकालीन महापुरुषों ने यहाँ आध्यात्मिकता का बीज बोया और विद्यमान महापुरुष पूज्य बापूजी उसे प्रभुप्रीति, ईश्वरभक्ति, भगवद्ज्ञान और सर्वात्मभाव के अमृत से सींच रहे हैं, विशाल वृक्ष में परिणत कर रहे हैं। पूज्यश्री ने यहाँ की जनता को अपने जीवन के अनेक मधुर प्रसंग व प्रेरक अनुभव बताये। इटावावासी इस समय इतने एकाग्रचित्त, आनंदित देखे गये मानों, स्वाति नक्षत्र में वर्षा की एक बूँद पाने हेतु आतुर सीपों को स्वाति नक्षत्र की जलधाराएँ हाथ लग गयी हों।

पूज्य बापूजी ने इटावावासियों एवं दूरभाष द्वारा सत्संग-लाभ ले रहे भारतभर के लाखों शिष्यों, सत्संगियों में ईश्वरप्राप्ति का उत्साह जगाते हुए संदेश दिया : ''अपने जन्मदिवस की बधाई दूसरे को नहीं दी जाती, दूसरे अपने को देते हैं किंतु ईश्वरप्राप्ति के दिवस की बधाई तो मैं खुलकर दे सकता हूँ क्योंकि आपका भी हौसला बुलंद होगा कि जब एक को ईश्वर मिल सकता है तो दूसरे को भी मिल सकता है। मेरा आत्मा अमर है, नित्य है, शुद्ध है, मुक्त है तो आपका आत्मा भी शुद्ध, बुद्ध, मुक्त

इटावा (उ.प्र.)

बही प्रेमाभक्ति की अमृतधार
जिससे छाया है आत्मखुमार...
गुरु-दीदार से छलके नयन...
हे गुरुवर ! तुम्हें
कोटि-कोटि अभिनंदन !

है। मैंने गुरु-प्रसादी पाकर आत्मस्वरूप को जान लिया है, तुम केवल जानने का इरादा बना लो, बस।

रुदन को गीत में बदलने की कला सीख लो।
वैर को प्रीत में बदलने की कला सीख लो।
द्वेष को प्रेम में बदलने की कला सीख लो।
जिंदगी है चार दिन की,
मरनेवाले शरीर के द्वारा अमर आत्मा के
आनंद को पाने की कला सीख लो।''

गाजियाबाद (उ.प्र.), ७ से ९ अक्टूबर : दिल्ली क्षेत्र के वासियों से तो इस बार अन्य क्षेत्रों के भक्तों को मधुर ईर्ष्या हो रही है। क्यों न हो, पिछले छः माह में इन भाग्यशालियों ने पूज्य बापूजी के ५ सत्संग-कार्यक्रम पाये, जिनके माध्यम से कुल १४ दिन सत्संग-लाभ इन्हें मिला।

गाजियाबादवासियों ने पूज्य बापूजी का सान्निध्य-लाभ लेकर महापुरुषों की सत्संगरूपी भवतरण नौका की दिव्यता का अनुभव किया, जिसमें बैठनेमात्र से निर्विषय आनंद, निर्मल सुख का खजाना हृदय में प्रकट हो जाता है और सदियों की थकान मिटानेवाली आत्मविश्रांति मिलने लगती है। उन्होंने यह समझ भी पायी कि भौतिक सुख-सुविधाएँ पानी हों तो खूब मजदूरी करनी पड़ती है और इतना करने पर जो संसारी सुख मिलता है वह चमकीले वर्क से ढँका हुआ दुःख ही सिद्ध होता है। संसार के सुख-दुःख से ऊपर उठने पर ही वास्तविक सुख मिलता है।

सुख-दुःख का गहन विश्लेषण कर उनकी पोल खोलते हुए पूज्य बापूजी ने बताया : ''दुःखी की भूल का फल है दुःख। दुःख ईश्वर ने नहीं बनाया। कुछ लोग बोलते हैं : 'भगवान हमारी परीक्षा ले रहे हैं।' परीक्षा तो वह लेता है जो आपके दिल की बात नहीं जानता। भगवान तो आपके दिल की गहराई को जानते हैं, वे परीक्षा क्यों लेंगे ? कुछ लोग बोलते हैं : 'हमारा भाग्य फूटा है।' नहीं भैया ! ऐसा दुनिया में कोई नहीं आया जिसकी सब वाहवाही करें अथवा जिसके सब दिन सुखद हों और ऐसा भी कोई नहीं आया जिसकी सभी लोग निंदा करें एवं सब दिन दुःखद हों। सुख और दुःख का यह ताना-बाना विकास की एक परिपाटी है। सुख सपना है, दुःख बुलबुला है, दोनों बीतते चले जायेंगे। तू सुख से भी सीख ले, दुःख से भी सीख ले। 'गीता' में भगवान कहते हैं :

गाजियाबाद (उ.प्र.)

न कोई शासन सत्ता है,
ये किसने बनायी व्यवस्था है !
यहाँ भीड़ लाखों-लाखों की,
फिर भी कैसी शांत अवस्था है !

सद्गुरु मिले तो सब मिले, न तो मिला न कोय

'आगमापायिनोऽनित्याः तांस्तितिक्षस्व भारत ।' ये आने-जानेवाले हैं, अनित्य हैं, इनकी कोई बुनियाद नहीं है। इन दुःखों को, परिस्थितियों को तू तितिक्षावान होकर देखता जा, गुजरने दे। जैसे ऊँचाई पर स्थित शिवमंदिर में जाना हो तो सीढ़ी पर पैर रखकर ऊपर चढ़ते-चढ़ते आप भगवान तक पहुँचते हैं, ऐसे ही यह जीवन के विकास की व्यवस्था है । सुख-दुःख, लाभ-हानि, निंदा-स्तुति, मित्र-शत्रु - ये सब जीवन में आते जायेंगे, चलते जायेंगे परंतु एक ऐसा परम मित्र है जो आपका साथ नहीं छोड़ता; वह है सत्यस्वरूप आत्मा-परमात्मा। हे मानव ! अपने नित्य स्वरूप का चिंतन, सुमिरण, ध्यान कर। उन धाराओं में बह मत, उदास मत हो।''

बड़ौदा (गुज.), विद्यार्थी शिविर, १२ से १४ व सत्संग-ध्यान योग शिविर, १५ से १७ अक्टूबर : आधुनिकता की आड़ में उपजी उच्छृंखलता के माहौल में जहाँ विद्यालयों में किसी एक कक्षा के ६० से ८० विद्यार्थियों को अनुशासित करने में अध्यापकों की नाक में दम आ जाता है, वहीं इस विद्यार्थी शिविर के वातावरण में आनेमात्र से बालकों के मन पर ऐसा सुंदर प्रभाव पड़ा कि वे स्वयं ही काफी अनुशासित और संयमित नजर आ रहे थे।

शिविर में पूज्यश्री के आगमन से पूर्व ही ये नौनिहाल आश्रम के साधकों द्वारा योगासनों का प्रशिक्षण पाकर तैयार रहते थे, पूज्यश्री से ध्यान, प्राणायाम तथा यौगिक प्रयोग सीखने के लिए, परीक्षा में सफल होने के सरल उपाय जानने के लिए, यादशक्ति, मनोबल व आत्मबल बढ़ाने की कुंजियाँ पाने के लिए, जीवन में सफलता प्राप्त करने के अनुभूत प्रयोग आत्मसात् करने के लिए... धनभागी सेवाधारियों ने दूर-दूर से आये विद्यार्थियों को योगविद्या, आत्मविद्या दिलाने में तन-मन-धन से सेवा की । अपनी व किराये की गाड़ियाँ, मोटरें सेवा में लगाकर लाखों विद्यार्थियों को लाभान्वित करने का श्रेय बड़ौदा समिति और सत्पात्र शिष्यों को जाता है।

रंगीन आकर्षक चित्रों के माध्यम से विद्यार्थियों में संस्कार-सिंचन हेतु शिविर के दौरान सत्संग-परिसर में लगायी गयी 'बाल संस्कार प्रदर्शनी' विद्यार्थियों का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित कर रही थी।

विद्यार्थी शिविर के बाद सत्संग-ध्यान योग शिविर सम्पन्न हुआ, जिसमें लाखों लोगों ने पूज्य बापूजी की सारगर्भित अमृतवाणी एवं सत्संग-ध्यान का लाभ लिया।

पूज्य बापूजी के मार्मिक वचनामृत में आया : ''दीक्षा के बिना शिक्षा 'साक्षर' का उलटा कर दो, राक्षसी प्रवृत्ति में उलझा देती है । ऐसे लोग अपने गिने-गिनाये शत्रुओं की आड़ में बम से कितने ही निर्दोष व निरपराध लोगों को चट कर देते हैं। कई पीढ़ियाँ बमों से दूषित वातावरण का शिकार बन जाती हैं। साक्षर व्यक्ति में अगर उचित दिशा का ज्ञान नहीं है तो उलटा दो... राक्षसी प्रवृत्ति में निरपराध व्यक्तियों की, लाखों-लाखों की जान ली जा रही है । धनभागी हैं वे जिनको ऐहिक विद्या के साथ दीक्षा, योगविद्या और आत्मविद्या मिलती है।

दिनांक १६ अक्टूबर को गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी पूज्य बापूजी का सत्संग-सान्निध्य व आशीर्वाद प्राप्त करने पहुँचे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा : ''पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में प्रणाम । ज्ञान-यज्ञ की बहती संस्कार सरिता में आप सबको डुबकी लगाने का अवसर मिला है। मैं तो उसका आचमन लेकर निकल जाऊँगा। शायद मेरे नसीब में आचमन ही लिखा है और आपके नसीब में संपूर्ण डुबकी लिखी है । इसलिए आप ज्यादा भाग्यशाली हो । अपने देश का झुकाव ऋषि-परंपरा की ओर है । अपने देश में सबसे उच्च स्थान संस्कारों का है और सदियों से अपने संस्कार-धरोहर को सही सलामत रखने का काम ऋषियों ने और ऋषि-परंपरा ने किया है।

पूज्य बापूजी ! देश और दुनिया... जिसकी कोई सीमा नहीं, वहाँ-वहाँ; जहाँ मनुष्य है, वहाँ इस संस्कार-धरोहर को पहुँचाने के लिए आप अथक तपश्चर्या कर रहे हैं। अनेक युगों से चलते आये मानव-कल्याण के इस तपश्चर्या-यज्ञ में आप अपने पल-पल की आहुतियाँ देते रहे हैं। उसमें से यह संस्कार की दिव्य ज्योति प्रकट हुई है । इसके प्रकाश में मैं और आप

पुण्यपुंज अमिट फल पा रहे,
सत्संग सरिता में नहा रहे।
धन्य हैं सत्य पथ के नन्हें राही,
निज जीवन ज्योति जगा रहे।
धन्य हैं वे माँ-बाप
जो बच्चों को सत्संग में लाते हैं।
यौगिक-क्रियाओं से जीवन उन्नत कर
गुरुज्ञान की गंगा में संग-संग नहाते हैं ॥

माता-पिता सुत बांधवा, ये तो घर-घर होय ॥

बड़ौदा (गुज.)

शील धर्म सत्कर्म से,
संत करें उपकार।
जो भी आये शरण में,
कर दें उसको पार ॥
पूज्यश्री का माल्यार्पण करते गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी।

(उपस्थित श्रोता) सब चलते रहें। मुझे विश्वास है और अब तो अनुभव ही मेरे विश्वास को दृढ़ बनाता जा रहा है। पहले तो ऐसा मानने में आता था कि गलत किये बिना चलता ही नहीं। अब मेरा विश्वास है कि कुछ भी गलत किये बिना भी चल सकता है; गलत किये बिना भी बहुत कुछ अच्छा हो सकता है। यह मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा है। इसका कारण है संतों के आशीर्वाद, संतों का सतत मार्गदर्शन, ऋषि-परंपरा के संस्कार और भूलकर भी उनकी बतायी मर्यादा के बाहर कदम नहीं रखना। मैं संतों के आशीर्वाद से ही जी रहा हूँ। मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि लाइसेन्स रिन्यू हो जाय। जैसे नेवला अपने घर में जाकर औषधि सूँघकर ताकत लेकर आता है, वैसे मैं भी समय निकालकर ऐसा अवसर खोज लेता हूँ। मैं तो मेरे स्वार्थ से आया था लेकिन पूज्य बापूजी ने आशीर्वाद दिया और आप सबको वंदन करने का मौका दिया, इसलिए मैं बापूजी का ऋणी हूँ।''

मोलेथा (गुज.), १७ शाम से १९ अक्टूबर तक : १७ अक्टूबर को बड़ौदा में ६ दिवसीय 'सत्संग - ध्यान योग शिविर' की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री मोलेथा आश्रम (गुज.) पहुँचे। जहाँ बरकाल ग्राम में महर्षि वेदव्यास की तपस्थली व्यासबेट के निकट नर्मदा तट पर शरद पूर्णिमा महोत्सव व सत्संग सम्पन्न हुआ। शरद पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र में रात्रि करीब साढ़े बारह बजे तक चले इस दिव्य महोत्सव में ध्यान-योगरूपी आत्मखीर का प्रसाद पहले ही बाँट दिया गया था, तत्पश्चात् चन्द्रकिरणों में परिपक्व खीर का प्रसाद भी उपस्थित भक्तों ने खाया। इस दिव्य रात्रि में चुनिंदा साधकवृंद ही पहुँच सके। ठीक ही कहा है :

जिन प्यारों पे ऐ जगवालो ! हो खास इनायत सद्गुरु की।
उनको ही संदेशा जाता है और वे ही बुलाये जाते हैं ॥

सत्संग-कार्यक्रम : ५ से ७ नवम्बर को ओढव समिति के वर्षों का सपना साकार होगा... दीवाली के दिनों में... स्थल : अर्बुदानगर मैदान, ओढव (अमदावाद, गुज.). संपर्क : ९८२५०९२२७१, ९३७४२७७९९९.

बड़ौदा (गुज.)

पूज्यश्री के सत्संग की विडियो डी.वी.डी., सी.डी. और ऑडियो कैसेट सत्संग-सत्र पूरा होने के तुरंत बाद स्टॉल से प्राप्त कर सकते हैं।

पूज्य बापूजी का दीपावली संदेश
सारे पर्व मनाने का फल यही है कि जीव अपने शिवस्वरूप को पा ले, अपनी आत्म-दीवाली में आ जाय । अपने जीवन में उजाला हो, दूसरों के जीवन में भी उजाला हो, व्यवहार की पवित्रता का उजाला हो, भावों की पवित्रता का उजाला हो, कर्मों की पवित्रता का उजाला हो और स्नेह की, मधुरता की मिठाई हो । राग-द्वेषादि कचरे को हृदयरूपी घर से निकालें एवं उसमें क्षमा, परोपकार आदि सद्गुण भरें। यही दीपावली पर्व का उद्देश्य है।
तुम दीवाली मनाओ, हम राजी हैं । तुम अच्छे कपड़े पहनो, हम कहते हैं जरूर पहनो । तुम मिठाई खाओ, अपने बेटों को खिलाओ, जरूर खिलाओ लेकिन यदि अड़ोस-पड़ोस के किसी लड़के का बाप गरीब है तो उस लड़के को भी एक जोड़ी कपड़ा दिला दो । अपने घर दीया जलाओ लेकिन किसीके घर का दीया बुझा हो तो जाकर चार दीये वहाँ भी जलाकर आओ, थोड़ी मिठाई वहाँ भी देकर आओ। आपका ऐसा कर्म अच्छी दीवाली लायेगा।
शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से जो कुछ भी करें, उस परमात्मा के प्रसाद को उभारने के लिए करें तो फिर ३६५ दिनों में आनेवाली दीवाली एक ही दिन की दीवाली नहीं रहेगी, आपकी-हमारी दीवाली रोज बनी रहेगी।
आप सभीको दीपावली की
खूब-खूब बधाइयाँ...
आनंद-ही-आनंद...
मंगल-ही-मंगल...
POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT P.O. - 400099 • DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH